

खण्ड 3  
गृह्यसूत्र

ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

---

## खण्ड 3 परिचय

---

पारस्करगृह्यसूत्र में प्रथमकाण्ड के प्रथमकण्डिका में स्थालीपाक का विशेष वर्णन है। स्थालीपाक के विषय में पारस्करगृह्यसूत्र का प्रथम सूत्र है - अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म ॥ १ ॥ अथ शब्द का यहाँ अर्थ है कि श्रौतकर्मों का विधान श्रौत सूत्र में हो चुका है, अब स्मार्त कर्मों का विधान करना चाहिए। अथ शब्द का एक और तात्पर्य है कि पूर्व काल में 'ॐकार' और 'अथ' शब्द-ये दोनों ब्रह्मा जी के कण्ठ का भेदन करके निकले थे, अतः ये मङ्गल-सूचक हैं। भारतीय परम्परा में जीवन शरीर के सूत्रपात से शरीर के पंचतत्त्व में विलीन होने तक सोलह संस्कार से बँधा हुआ है। विवाह संस्कार द्वारा नवदम्पति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं और पुनः सन्तानोत्पत्ति द्वारा सृष्टि-प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। विवाह-संस्कार और गृहस्थाश्रम ही समस्त सामाजिक व धार्मिक क्रियाकलापों का आधार है। विवाह के अनन्तर सन्तानोत्पत्ति हेतु गर्भाधान संस्कार, उसकी सुरक्षा व पुष्टि हेतु क्रमशः पुंसवन व सीमन्तोन्नयन संस्कार एवम् सुखद व सम्यक् प्रसव तथा प्रसूता व शिशु की रक्षा सुनिश्चित करने हेतु जातकर्म संस्कार सम्पन्न होता है। इस संस्कारों में से प्रत्येक का अपना विशिष्ट महत्त्व है। वर्तमान में संस्कारों की संख्या सामान्यतः सोलह मानी गयी है- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उनपनय, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह एवम् अन्त्येष्टि। हिन्दूजीवन अपने आरम्भ से अन्त तक प्रधानतः सोलह संस्कारों में आबद्ध है। इन संस्कारों का मनोवैज्ञानिक, पर्यावरणीय, सामाजिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक व वैज्ञानिक महत्त्व है। संस्कार व्यक्ति के जीवन को संतुलित बनाते हैं तथा उसे दिशा प्रदान करते हैं। संस्कारों का मानव के उत्थान में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन समस्त संस्कारों के विधिविधान समय व प्रकृति की प्रयोगशाला में दीर्घकाल तक परीक्षित हैं। संस्कारों से मानवजीवन की सामाजिकता को बल मिलता है तथा व्यक्ति के बल, बुद्धि, प्रज्ञा, विवेक व दार्शनिक प्रतिभा का विकास होता है। परिवार, समाज व राष्ट्र का समन्वय होता है।

---

## इकाई 1 स्थालीपाक एवं होमविधि का स्वरूप

---

### इकाई की संरचना

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 स्थाली पाक एवं होम विधि का स्वरूप
- 1.3 स्थालीपाकगत अनुष्ठान की विधि
  - 1.3.1 स्थालीपाक होम का सामान्य निरूपण एवम् उसके पात्रों का सामान्य अर्थ
- 1.4 सारांश
- 1.5 पारिभाषिक शब्दावली
- 1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.7 सहायक पाठ्यसामग्री
- 1.8 बोध प्रश्न

---

### 1.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- होम विधि के स्वरूप को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
- पञ्चभू संस्कार का निरूपण कर सकेंगे।
- श्रौत एवम् स्मार्त के अन्तर्सम्बन्धों को संक्षेप में समझाने में कुशल हो सकेंगे।
- देवताविषयक विश्लेषण सुगमता से कर सकेंगे।
- स्मार्तयज्ञ के स्थाली पाक के विधि में वर्णित पात्रों से
- सबन्धि पारिभाषिक शब्दावली को जानने में समर्थ हो सकेंगे।

---

### 1.1 प्रस्तावना

---

प्राचीन वैदिक साहित्य की विशाल परम्परा में अन्तिम कड़ी सूत्रग्रन्थ हैं। यह सूत्र-साहित्य तीन प्रकार का है- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र। श्रौतसूत्रों में जो वर्णन किया गया है, वह विशेष रूप से यज्ञों के विधि-विधान और धार्मिक प्रक्रियाओं से सम्बन्धित हैं तथा वे साधारण समाज के लिए उतना विशेष महत्त्व नहीं रखते हैं जितना गृह्यसूत्रों का स्थान है। वेदविहित कर्मों का विधान श्रौतसूत्रों में वर्णन किया जा चुका है। धर्मशास्त्रविहित कर्मों का विधान करना स्मार्त रूप में प्राप्त है, अतः अग्निहोत्र की आग में किये गये धार्मिक कार्य, जिनका अनुष्ठान गृहस्थ करते हैं, ऐसे कार्यों के निरूपण को गृह्यकार्य कहते हैं। अब आप इस इकाई में गृह्याग्नि के स्वरूप के अन्तर्गत स्थालीपाक का अध्ययन करेंगे, अतः इसका निरूपण प्रारम्भ हो रहा है।

## 1.2 स्थाली पाक एवं होम विधि का स्वरूप

सर्वप्रथम यहाँ पर गृह्य शब्द क्या है? 'ग्रह्'धातु से क्यप् प्रत्यय करने पर गृह्य शब्द की सिद्धि हुई है, जिसका अर्थ होता है 'ग्रहण करने योग्य'। पारस्करगृह्यसूत्र में 'गृह्याग्नि'शब्द का वर्णन किया गया है। इसका अर्थ होता है अग्निहोत्र की आग, जिसको स्थापित करके रखना प्रत्येक का विहित कर्म है। गृह्य आवसथ्याग्नि में जो स्थालीपाक (गृह्यस्थालीपाक) हैं, उन सभी स्थालीपाकों का कर्म, क्रिया और अनुष्ठान का वर्णन विस्तार से किया जायेगा। गृह्याग्नि, आवसथ्याधानादि सभी कर्मों में अधिकारी केवल यजमान ही रहता है, कोई ऋत्विक् नहीं। गृह्याग्नि से तीन प्रकार की अग्नि का ज्ञान होता है - 1-आवसथ्याग्नि, 2-शालाग्नि, 3-औपासनाग्नि। गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों की रचना के मूल उद्देश्य में निहित है - सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक और विधि सम्बन्धी नियम तथा उनके नियमों का निरूपण करना। गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों के अलग-अलग सिद्धान्त सम्प्रदाय हैं इसलिए इनमें वर्णित नियम कहीं-कहीं समान प्राप्त होते हैं और कहीं-कहीं अलग मत प्राप्त होते हैं। इसमें ऐसा कहा जा सकता है कि सम्भवतः इनके भेद स्थानीय और भौगोलिक कारणों से रहे हों और इस दृष्टि से उन्हें समसामयिक भारत के अन्यान्य प्रदेशों का प्रतिनिधि माना जा सकता है। गृह्यसूत्र का जो स्वरूप है, वह श्रौत (अपौरुषेय अथवा ब्रह्म) नहीं माने जाते बल्कि स्मार्त समझे जाते हैं और वे पारिवारिक तथा सामाजिक नियमों की परम्परा को व्यक्त करते हैं। गृह्यसूत्रों में पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित संस्कारों का विवेचन है और वे कैसे किए जाने चाहिए, इसके पूर्ण विधि-विधान दिए गए हैं। वेद द्वारा प्रतिपादित विषयों को स्मरण कर उन्हीं के आधार पर आचार-विचार को प्रकाशित करनेवाली शब्दराशि को "स्मृति" कहते हैं। स्मृति से विहित कर्म स्मार्तकर्म हैं। इन कर्मों की समस्त विधियाँ स्मार्तसूत्रों से नियन्त्रित हैं। स्मार्तसूत्र का नामान्तर गृह्यसूत्र है। अतीत में वेद की अनेक शाखाएँ थीं। प्रत्येक शाखा के निमित्त गृह्यसूत्र भी होंगे। वर्तमानकाल में जो गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं वे अपनी शाखा के कर्मकाण्ड को प्रतिपादित करते हैं। स्मार्त में यज्ञ का विधान किया गया है। यज्ञ के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता में इसके महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है यथा - भगवान् ने सभी कार्यों को बन्धन स्वरूप बतलाया है परन्तु यज्ञ को- **यज्ञार्थात् कर्मणो...न्यत्र लोको...यं कर्मबन्धनः॥**-(गीता-3/9) कहकर बन्धन कारक नहीं बताया है। अतएव इसे बुद्धिमानों को भी पवित्र करने वाले 'पावनानि मनीषिणाम्'कार्यों में परिगणित किया है। स्मार्तयज्ञ का आधार अग्नि है और वह अग्नि शास्त्रीय और लौकिक दोनों प्रकार का होता है। शास्त्रीय अर्थात् आधान विधि के द्वारा स्वीकृत अग्नि औपासन, आवसथ्य, गृह्य, स्मार्त आदि शब्दों से कहा जाता है। सामान्यतः गृह्यकर्मों के दो विभाग बताये गए हैं - सप्तपाकसंस्था और संस्कार। इन स्मार्तकर्मों में सप्तपाकसंस्थाओं का अनुष्ठान स्मार्ताग्नि पर विहित है। इनको वही व्यक्ति सम्पादित कर सकता है जिसने गृह्यसूत्र द्वारा प्रतिपादित विधान के अनुसार स्मार्ताग्नि का परिग्रहण किया हो। स्मार्ताग्नि का विधान विवाह के समय अथवा पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के समय हो सकता है। औपासन, गृह्य अथवा आवसथ्य, ये स्मार्ताग्नि के नामान्तर हैं। याग की इक्कीस संस्थाओं में पहली सात पाकसंस्था के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं - औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिश्राद्ध, श्रवणाकर्म और शूलगवा। एक बार इस अग्नि का परिग्रह कर लेने पर जीवनपर्यन्त उसकी उपासना एवम् संरक्षण करना अनिवार्य है। इस प्रकार से उपासना करते हुए जब उपासक की मृत्यु होती है, तब उसी अग्नि से उसका दाह संस्कार होता है। उसके अनन्तर उस अग्नि का विसर्जन हो जाता है। अपनी वेदादि शाखा के अनुकूल ही गृह्याग्नि-विधि करनी चाहिये। दूसरे की शाखा के विधान

से याग-विशेषों का अनुष्ठान करने पर भय की प्राप्ति होती है और कीर्ति का नाश होता है। पुत्र, कन्या और आगे उत्पन्न होनेवाले पुत्रादि गृह्यनाम से कहे जाते हैं। यजमान के जितने दायद होते हैं, वे सब गृह्यनाम से कहे जाते हैं। उनके संस्कार, याग और शान्तिकर्म क्रियाओं में अपनी गृह्याग्नि से ही अनुष्ठान करना चाहिये।

सत्यव्रत समाश्रमी के अनुसार सात पाकयज्ञ कहे गए हैं - सयान्होमा, प्रार्थहोम, स्थालीपाक, नवयज्ञ, वैश्वदेव, पितृयज्ञ और अष्टका। लोक में एक कलश चावलों से भर कर विशेष देवी-देवताओं की पूजा कर रखा जाता है। कलश पूजन के उपरान्त चावलों को कपिला गाय के दूध में डाल कर पका कर खीर बनाई जाती है, जिसे स्थालीपाक प्रसाद कहा जाता है। वैदिक साहित्य में स्थाली नामक विशेष पात्र का उपयोग श्रौतयज्ञों में घृत एवम् शाकल्य चरू आदि आहुतियोग्य सामग्री को रखने के लिए किया जाता है। यथा - स्थालीपाक, चरूस्थाली, आज्यस्थाली आदि। घी भरकर जिस पात्र में रखकर यज्ञवेदी पर तपाया जाता है, उसे आज्यस्थाली कहते हैं और जिसमें चरू अर्थात् चावल पकाया जाता है, उसे चरूस्थाली कहते हैं -

**दर्भैस्त्रिधा परिस्तीर्य पूर्वौदौ तत्र पात्रकम्।**

**आसादयेदिधमवह्नी भूमौ च श्रुकश्रुवद्वयम्॥**

**आज्यस्थाली चरूस्थाली कुशाज्यञ्च प्रणीतया।**

**प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणीञ्च गृहीत्वापूर्य वारिणा॥(अग्निपुराण 22/23)**

'स्थालीपाक'का अर्थ है एक अनुष्ठान जिसमें दूध में उबले हुए चावल का प्रसाद शामिल होता है।

'स्थाली'का अर्थ होता है मिट्टी का बर्तन या कड़ाही, खाना पकाने का बर्तन, कड़ाही, केतली; न हि भिक्षुकाः शान्तिं स्थाल्यो निधिश्चीयन्ते"बर्तन में ही पके हुए भोजन का प्रसाद", जैसा कि शिवपुराण 1.13 में परिभाषित किया गया है। तदनुसार, "कच्चा चावल, अन्य खाद्यान्न, घी, फल, जड़ें, पका हुआ भोजन, यज्ञ संस्कार के लिए घी में भिगोया हुआ आदि", इन सभी चीजों का शास्त्रग्रन्थों के अनुसार विधिवत उपयोग किया जाना। यदि कोई हव्य (पके हुए चावल) नहीं है, तो मुख्य बलिदान अकेले ही किया जाएगा। **स्थाल्यं वैदूर्यमयं पचति तिलखलीमिन्धनैश्चन्दनाद्यैः(भर्तृहरि 2.1)**

कुछ सामान्य लौकिक अर्थों में स्थालीपाक -

- 1) गृहस्थ द्वारा किया जाने वाला एक विशेष धार्मिक कार्य।
- 2) दूध में उबाले गए चावल का एक व्यञ्जन।
- 3) सोम तैयार करने में उपयोग किया जाने वाला एक विशेष बर्तन।
- 4) चावल, आदि, देवताओं और पितरों को प्रस्तुत करने के लिए उबाले जाते हैं।
- 5) स्थालीपाक [पुंलिङ्ग] - एक प्रकार का पका हुआ प्रसाद।
- 6) दूध में उबाला हुआ जौ या चावल का एक व्यञ्जन (आहुति के रूप में उपयोग किया जाता है)।
- 7) स्थालीपाक "मिट्टी के खाना पकाने के बर्तन ( स्थाली) से अग्नि के लिए उबले हुए चावल"

9) स्थालीपाक- स्थाली शब्द का अर्थ है पकाने का बर्तन अर्थात् मिट्टी की हाण्डी, सामासिक स्थालीपाक का अर्थ है - एक धार्मिक कृत्य, जिसका सामान्य अर्थ है आज्याधिश्रयण, पुरोडास-निर्माण, धान तथा सत्तु प्रभृति।

मृण्मयी प्रस्थपूर्ण चरुस्थाली कांस्यायसादिलोहमयीत्येके। विंश यहलविस्तारायता पिष्टसंयवनी पात्री, सुवृत्ता चतुष्पस्थोदकपूर्णा मदन्ती। याव पयोदोहः तावत्प्य पूर्णो सान्नायदधिकुम्भ्यौ च। संयुक्तषु पुरोडाशनिधानाय गावाऽलं तदुक्तसङ्कयाप्रमाणानि कपालानि ह्यङ्गुलायतविस्ताराणि वा। सर्वेषां नमर्धाङ्गुलं। प्रस्थतण्डुलपावा चरुस्थाली। हविशेषदानोक्त द्वमस्थतण्डुलपाका प्रस्थार्धतण्डुलपाका प्रस्थचतुर्भागतण्डुलपाका वा। संस्त्राक्स्रोतोयुक्ता वृत्तो वै.पाल अग्निहोत्रस्थाली। द्रोणार्धतण्डुलपाकाऽन्वाहार्यपचनखाली।

स्थालीपाक का वर्णन रसशास्त्र में भी प्राप्त होता है, यह अमृतसारलौह में बताई गई प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है - अब त्रिफला का बचा हुआ ताजा काढ़ा एक लोहे के बर्तन में डाला जाता है और उपर्युक्त लोहे को उसमें डुबोया जाता है और सूखने तक पकाया जाता है। इसके बाद इस प्रक्रिया को हस्तिकर्णपलाश (जड़), शतावरी, भृङ्गराज और केशराज, सभी या किसी एक के रस के साथ दोहराया जाता है।

स्थालीपाक सात पाकसंस्थाओं या पाकयज्ञों (सात यज्ञों के समूह) में से एक है। "एक व्यक्ति को नियम के अनुसार हमेशा पाकयज्ञ, हमेशा हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ (सोम बलिदान) अर्पित करने चाहिए। यदि वह शाश्वत पुण्य की कामना करता है।" - इन यज्ञों का उद्देश्य शाश्वत आनन्द की प्राप्ति है और इसलिए इन्हें जीवितावधि कुछ निश्चित ऋतुओं में, बिना किसी विशेष अवसर (निमित्त) के और बिना किसी विशेष उद्देश्य के किया जाना चाहिए।

### 1.3 स्थालीपाकगत अनुष्ठान की विधि

पारस्करगृह्यसूत्र में प्रथमकाण्ड के प्रथमकण्डिका में स्थाली पाक का विशेष वर्णन है। स्थालीपाक के विषय में पारस्करगृह्यसूत्र का प्रथम सूत्र है - अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म॥'अथ'शब्द का यहाँ अर्थ है कि श्रौतकर्मों का विधान श्रौतसूत्र में हो चुका है, अब स्मार्तकर्मों का विधान करना चाहिए। अथ शब्द का एक और तात्पर्य है कि पूर्व काल में 'ॐकार' और 'अथ' शब्द, ये दोनों ब्रह्मा जी के कण्ठ का भेदन करके निकले थे, अतः ये मङ्गल-सूचक हैं। जो शास्त्रोक्त कर्मों का अनुष्ठान करके उन्हें ऊँचे उठाना चाहता है, वह 'अथ' शब्द का प्रयोग करे। इससे वह कर्म अक्षय होता है। अब यहाँ पर कुश-कण्डिका में गृह्याग्नि में पकाये गये स्थालीपाकों से सम्पन्न होनेवाले अनुष्ठानों का विधान संक्षेप से किया जाएगा। अग्रिम सूत्रों के द्वारा इसके विधि का प्रतिपादन किया जा रहा है - परिसमुद्दोपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीः संस्कृत्यार्थवत्प्रोक्ष्य निरूप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्नि कुर्यात्॥ २॥ सुवं प्रतप्य संमृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यात्॥ ३॥ आज्यमुद्रास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनान्कुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयात्॥ ४॥ एष एव विधियन्त्र कचिद्धोमः॥ ५॥

गृहकल्प के वर्णन क्रम में यहाँ पर भविष्यपुराण (मध्यमपर्व — द्वितीय भाग) अध्याय – १४ से १६ कुशकण्डिका-विधान का वर्णन किया जा रहा है - ॐ दर्भैः परिसमूह्य, परिसमूह्य,

परिसमूह। अर्थात्- कुशाओं से बुहार कर गन्दगी साफ करें। परिसमूहन के विषय में कहा गया है कि परिसमूहन के लिये परिगणित शाखा वाले कुश ही प्रयोग करने चाहिए, न्यून या अधिक संख्या में उन्हें ग्रहण करने पर वे अभीष्ट कर्म को निष्फल कर देते हैं। पृथ्वी पर जो कृमि, कीट और पतंग आदि भ्रमण करते हैं, उनकी रक्षा के लिये परिसमूहन कहा गया है। वेदी पर जो तीन रेखाएँ बनाने के लिए कही गयी हैं, उनको बराबर बनाना चाहिये, उन्हें न्यूनाधिक नहीं करना चाहिये, ऐसा ही शास्त्र का कथन है। आचार्य इन कर्मों में तीन कुशाओं का परिगणन करता है और इन तीन कुशों से धूलि झाड़ता है। जिस मन्त्र से कुश ग्रहण करता है, उसके ऋषि दक्ष, छन्द जगती और देवता विष्णु हैं। पृथ्वी के शोधन में 'भूरसि०' (यजु० १३.१८) इस मन्त्र का विनियोग करें। इस मन्त्र के ऋषि सुवर्ण, गायत्री और जगती छन्द तथा सूर्य देवता हैं। अनन्तर उन तीन कुशाओं को तर्जनी तथा अँगूठे से पकड़कर ईशानकोण से लेकर दक्षिण होते हुए ईशानकोण तक वलयाकृति में घुमाये तथा उनसे भूमि का मार्जन करें। यही परिसमूहन-क्रिया है।

उपलेपन -ॐ गोमयेन उपलिप्य, उपलिप्य, उपलिप्य अर्थात्- गाय के गोबर से लीपकर (पवित्र बनाएँ)। उपलेपन का उद्देश्य है कि यह पृथ्वी मधु और कैटभ नाम वाले दैत्यों के मेद से व्याप्त है, इसलिये इसे गोबर से लीपना चाहिये। जो गाय वन्ध्या, दुष्टा, दीनाङ्गी और मृतवत्सा (जिसके बछड़े मर जाते हों) हो, उसका गोबर यज्ञ के कार्य में नहीं लाना चाहिये, ऐसी शास्त्र की आज्ञा है। 'मा नस्तोके०' (यजु० १६। १६) इस मन्त्र के द्वारा गोमय से भूमि का उपलेपन करे अर्थात् गोबर और जल से लीपकर सुवा के मूल भाग से अथवा कुश से वेदी पर रेखा करनी चाहिये। इसका उद्देश्य है अस्थि, कण्टक, तुष-केशादि से शुद्धि। ऐसा ब्रह्मा जी का कथन है। 'ॐ सुवमूलेन उल्लिख्य, उल्लिख्य, उल्लिख्य' अर्थात्- सुवा के मूल से रेखा खींच कर चिह्नित करें। खड्गाकृति किसी काष्ठखण्ड या सुवमूल से (तीन) रेखायें खींचनी हैं। विशेष रूप से खैर की लकड़ी से बने सुव के द्वारा रेखाकरण करना है। पूर्व से पश्चिम की ओर तीन रेखाएँ खींचे। पहली रेखा दक्षिण की ओर अनन्तर उत्तर की ओर बढ़ाएँ। इसके विपरीत करने पर अमङ्गल होता है।

उद्धरण - ॐ अनामिकाङ्गुष्ठेन उद्धृत्य, उद्धृत्य, उद्धृत्य अर्थात्- अनामिका एवम् अँगूठे से उठाकर मिट्टी को बाहर फेंक दें। अर्थात् अङ्गुष्ठ तथा अनामिका से उन तीनों रेखाओं से मिट्टी निकाले, इसे उद्धरण कहा जाता है। इस समय 'मित्रावरुणाभ्य०' (यजु० ७। २३) इत्यादि मन्त्रों का स्मरण करें। इसका तात्पर्य है कि जो पतङ्ग आदि भयंकर जीव सदा आकाश में उडते रहते हैं, उन पर प्रहार करने के लिये वेदी से मिट्टी उठाने का विधान है। अनन्तर अभ्युक्षण करना है - ॐ उदकेन, अभ्युक्ष्य, अभ्युक्ष्य, अभ्युक्ष्या अर्थात्- उदक अर्थात् जल से सिञ्चित करके पवित्र करें। यहाँ पर कुशपुष्पोदक अथवा पञ्चगव्य या पञ्चरत्नोदक अथवा पञ्चपल्लवों के जल से अभ्युक्षण (अभिसिञ्चन) करें। अभ्युक्षण का हेतु कहा गया है कि देवता और पितर जलस्वरूप हैं, अतः विधिज्ञ ऋषि-मुनियों ने जल से वेदी का प्रोक्षण करने की आज्ञा दी है। अब इसके बाद (कांसे या ताम्बे के पात्र में अग्नि लेकर) वेदी पर उसकी स्थापना करें। सौभाग्यवती स्त्रियों के द्वारा ही अग्नि लाने का विधान है। शुभदायक मृण्मय (मिट्टी से बना हुआ) पात्र को जल से धोकर उसमें अग्नि रखकर लानी चाहिये। यहाँ पर तात्पर्य यह है कि अभ्युक्षणक्रिया के अनन्तर कर्म-साधन-भूत लौकिक स्मार्त अथवा श्रौताग्नि का आनयन करे और अपने सामने स्थापित करें। इस क्रिया में 'मे गृह्णामि०' इस मन्त्र का पाठ करें। 'क्रव्यादमग्निं०' (यजु० ३५। १९) इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए लायी गयी अग्नि में से कुछ आग दक्षिण दिशा की ओर फेंक दें, यह 'क्रव्यादाग्नि' कही गयी है। क्रव्यादाग्नि का ग्रहण न करें। 'संसरक्ष०' इस मन्त्र से उस

अग्नि का आवाहन करें। तदनन्तर 'वैश्वानर०' (यजु० २६। ७) इस मन्त्र से कुण्ड आदि में अग्नि-स्थापन करें। 'बध्नासि०' इस मन्त्र से अग्नि की प्रदक्षिणा करें तथा अग्निदेव को नमस्कार करें। अग्नि के दक्षिण में वरण किये गये ब्रह्मा को कुश के आसन पर 'ब्रह्मन् इह उपविश्यताम्' कहकर बैठाये। उस समय 'ब्रह्म जज्ञानं०' (यजु० १३। ३) तथा 'दोग्धी धेनु०' 'इन दो मन्त्रों का पाठ करें। अग्नि के उत्तरभाग में प्रणीता-पात्र को स्थापित करें। 'इमं मे वरुण०' (यजु० २१। १) इस मन्त्र से प्रणीता-पात्र को जल से भर दें। इसके अनन्तर कुण्ड के चारों ओर कुश-परिस्तरण करें और काष्ठ (समिधा), व्रीहि, अन्न, तिल, अपूप, भृङ्गराज, फल, दही, दूध, पनस, नारिकेल, मोदक आदि यज्ञ-सम्बन्धी प्रयोज्य पदार्थों को यथास्थान स्थापित करें। विकंकतवृक्ष की लकड़ी से बनी सुवा तथा शमी, शमीपत्र, चरूस्थाली आदि भी स्थापित करें। प्रणीता-पात्र का स्पर्श होम-काल में नहीं करना चाहिये। स्नान-कुम्भ को यज्ञपर्यन्त स्थिर रखना चाहिये। प्रादेशमात्र के दो पवित्रक बनाकर प्रोक्षणी-पात्र में स्थापित करें। प्रणीता-पात्र के जल से प्रोक्षणी-पात्र में तीन बार जल डालें। प्रोक्षणी-पात्र को बायें हाथ में रखकर मध्यमा तथा अङ्गुष्ठ से पवित्रक ग्रहण कर 'पवित्रं ते०' (ऋ० ९। ८३। १) इस मन्त्र से तीन बार जल छिड़कें, स्थापित पदार्थों का प्रोक्षण करें और प्रोक्षणी-पात्र को प्रणीता-पात्र के दक्षिण-भाग में यथास्थान रख दें। प्रादेशमात्र के अन्तर में आज्यस्थाली रखें। घी को अग्नि में तपाये, उसमें से अपद्रव्यों का निरसन करें। इसके बाद पर्यग्निकरण करें। एक जलते हुए आग के अङ्गारे को लेकर आज्यस्थाली और चरूस्थाली के ऊपर भ्रमण कराये। इस समय 'कुलायिनी०' (यजु० १४। २) इस मन्त्र का पाठ करें। अनन्तर सुवा को दायें हाथ में ग्रहण कर अग्नि पर तपाये। सम्मार्जन-कुशाओं से सुवा को मूल से अग्रभाग की ओर सम्मार्जित करें। इसके बाद प्रणीता के जल से तीन बार प्रोक्षण करें। पुनः सुवा को आग पर तपाये और प्रोक्षणी के उत्तर की ओर रख दें। आज्यपात्र को सामने रख लें। पवित्री से घी का तीन बार उत्प्लवन कर लें। पवित्री से ईशान से आकर दक्षिणावर्त होते हुए ईशानपर्यन्त पर्युक्षण करें। अनन्तर अग्निदेव का इस प्रकार ध्यान करे — 'अग्नि देवता का रक्त वर्ण है, उनके तीन मुख हैं, वे अपने बायें हाथ में कमण्डलु तथा दाहिने हाथ में सुवा ग्रहण किये हुए हैं।' ध्यान के अनन्तर सुवा लेकर हवन करें। इस प्रकार स्वगृह्योक्त विधि के द्वारा ब्रह्मा तथा ऋत्विजों का वरण करना चाहिये। कुशकण्डिका-कर्म करके अग्नि का पूजन करें। आधार, आज्यभाग, महाव्याहृति, प्रायश्चित्त, प्राजापत्य तथा स्विष्टकृत् हवन करें। प्राजापति और इन्द्र के निमित्त दी गयी आहुतियाँ आधारसंज्ञक हैं। अग्नि और सोम के निमित्त दी जानेवाली आहुतियाँ आज्यभाग कहलाती हैं। 'भूर्भुवः स्वः' — ये तीन महाव्याहृतियाँ हैं। 'अयाश्चाग्ने०' इत्यादि पाँच मन्त्र प्रायश्चित्त संज्ञक हैं। एक प्राजापत्य आहुति तथा एक स्विष्टकृत् आहुति — इस प्रकार होम में चौदह आहुतियाँ नित्य-संज्ञक हैं। इस प्रकार चतुर्दश आहुत्यात्मक हवन कर कर्म-निमित्तक देवता को उद्देश्य कर प्रधान हवन करना चाहिये। जहाँ कहीं हवन होगा, वहाँ यही विधि अपनाई जायेगी। इस प्रकार ऊपर परिसमूहन आदि क्रियाओं के सहित उसके उद्देश्यों का भी कथन किया गया है। यहाँ पर स्थालीपाक से सम्बन्धित जो कर्म कहे गए हैं, उनके नियम और फलकथन का वर्णन किया जा रहा है। वेदी पर रखा हुआ अमृत कलश दैत्यों द्वारा हडप लिया गया, यह देख कर ब्रह्मा आदि सब देवताओं ने वेदी की रक्षा के लिये उस पर समिधा सहित अग्नि की स्थापना की। यज्ञ से दक्षिण दिशा में दानव आदि स्थित होते हैं; अतः उनसे यज्ञ की रक्षा के लिये ब्रह्मा को यज्ञ वेदी से दक्षिण दिशा में स्थापित करना चाहिये। उत्तर दिशा में प्रणीता-प्रोक्षणी आदि सब यज्ञ पात्र रखे जाते हैं। पश्चिम में यजमान रहे और पूर्व दिशा में सब पुरोहितों को रहना चाहिये। जुए में, व्यापार में और यज्ञ कर्म में यदि कर्ता उदासीन चित्त हो जाय तो उसका वह कर्म नष्ट हो जाता है, यही



वास्तविक स्थिति है। यज्ञकर्म में अपनी ही शाखा के विद्वान् को ब्रह्मा और आचार्य बनाना चाहिये। अन्य ऋत्विजों के लिये कोई नियम नहीं है, यथा लाभ उनका पूजन करना चाहिये। तीन-तीन अङ्गुल की दो पवित्री होनी चाहिये। चार अङ्गुल की एक प्रोक्षणी, तीन अङ्गुल की एक आज्यस्थाली और छः अङ्गुल की चरुस्थाली होनी चाहिये। दो अङ्गुल का एक उपयमन कुश और एक अङ्गुल का सम्मार्जन कुश रखे। सुव छः अङ्गुल का और सुच साठे तीन अङ्गुल का बताया गया है। समिधाएँ प्रादेश मात्र (अँगूठे से लेकर तर्जनी के शिरो भाग तक के नाप की) हों। पूर्णपात्र छः अङ्गुल का हो। प्रोक्षणी के उत्तर भाग में प्रणीता-पात्र रहे और वह आठ अङ्गुल का हो। जो कोई भी तीर्थ (सरोवर), समुद्र और सरिताएँ हैं, वे सब प्रणीता-पात्र में स्थित होते हैं, अतः उसे जल से भर देना चाहिए। वस्त्रहीन वेदी नग्न कही जाती है, अतः विद्वान् पुरुष उसके चारों ओर कुश बिछा कर उसके ऊपर अग्नि स्थापन करें। इन्द्र का वज्र, विष्णु का चक्र और महादेव जी का त्रिशूल, ये तीनों कुश के रूप में तीन 'पवित्रच्छेदन' बनते हैं। पवित्री से ही प्रोक्षणी को प्रणीता के जल से संयुक्त करना चाहिये। अतः पवित्री-निर्माण अत्यन्त पुण्य दायक कर्म कहा गया है। आज्यस्थाली पल मात्र की बनानी चाहिये। कुम्हार के चाक पर गढ़ा हुआ मिट्टी का पात्र 'आसुर' कहा गया है। वहीं हाथ से बनाया हुआ स्थाली पात्र आदि हो तो उसे 'दैविक' माना गया है। सुव से शुभ और अशुभ सभी कर्म होते हैं। अतः उसकी पवित्रता के लिये उसे अग्नि से तपाने का विधान है। सुव (Struv, सुव - लकड़ी से बनी चम्मच; a small wooden ladle, with a double extremity or two oval collateral excavations, used for pouring clarified melted butter(ghee) into the large ladle or sruc) को यदि अग्र भाग की ओर से थाम लिया जाय तो स्वामी की मृत्यु होती है। मध्य में पकड़ा जाय तो प्रजा एवम् सन्तति का नाश होता है और मूल भाग में उसे पकड़ने से होता की मृत्यु होती है, अतः विचार कर उसे हाथ में धारण करना चाहिये। अग्नि, सूर्य, सोम, विरञ्चि (ब्रह्माजी), वायु तथा यम, ये छः देवता सुव के एक-एक अङ्गुल में स्थित हैं। अग्नि भोग और धन का नाश करने वाले हैं, सूर्य रोग कारक होते हैं। चन्द्रमा का कोई फल नहीं है। ब्रह्माजी सब कामना देने वाले हैं, वायु देव वृद्धि दाता हैं और यमराज मृत्यु दायक माने गये हैं (अतः सुव को मूल भाग की ओर तीन अङ्गुल छोड़कर चौथे-पाँचवें अङ्गुल पर पकड़ना चाहिये)। सम्मार्जन और उपयमन नामक दो कुश बनाने चाहिये। इनमें से सम्मार्जन कुश सात शाखा (कुश) का और उपयमन कुश पाँच शाखा का होता है। सुव तथा सुव-निर्माण करने के लिये श्री पर्णी (गंभारी), शमी, खदिर, विकडकत (कँटाई) और पलाश - ये पाँच प्रकार के काष्ठ शुभ जानने चाहिये। हाथ भर का सुवा और तीस अङ्गुल का सुवा उत्तम माना गया है। यह सुव और सुक के विषय में बताया गया है। पतितों तथा गर्दभ आदि जीवों के दृष्टि-दोष का निवारण करने के लिये सब पात्रों के प्रोक्षण (शुद्धि, सफाई; cleansing, ablutionary) की विधि है। पूर्णपात्र-दान किये बिना यज्ञ में छिद्र उत्पन्न हो जाता है और पूर्णपात्र की विधि कर देने पर यज्ञ की पूर्ति हो जाती है। आठ मुट्टी का 'किञ्चित' होता है, चार किञ्चित का 'पुष्कल'(अनाज नापने का एक प्राचीन मान जो मुट्टियों के बराबर होता था) होता है और चार पुष्कल का एक 'पूर्णपात्र' होता है, ऐसा विद्वानों का मत है। होम काल प्राप्त होने पर अन्यत्र कहीं आसन नहीं देना चाहिये। दिया जाय तो अग्नि देव अतृप्त होते और दारुण शाप देते हैं। 'आघार' नाम की दो आहुतियाँ अग्नि देव की नासिका कही गयी हैं। 'आज्य भाग' नाम वाली दो आहुतियाँ उनके नेत्र हैं। 'प्राजापत्य' आहुति को मुख कहा गया है और 'व्याहृति' होम का कटि भाग बताया गया है। 'पञ्चवारुण' होम को दो हाथ, दो पैर और मस्तक कहते हैं। 'स्विष्टकृत्' होम तथा 'पूर्णाहुति' ये दो आहुतियाँ दोनों कान हैं। अग्निदेव के दो मुख, एक हृदय,

चार कान, दो नाक, दो मस्तक, छः नेत्र, पिङ्गल वर्ण और सात जिह्वाएँ हैं। उनके वाम-भाग में तीन और दक्षिण-भाग में चार हाथ हैं। खुक, सुवा, अक्ष माला और शक्ति, ये सब उनके दाहिने हाथों में हैं। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृतपात्र लिये हुए हैं। दो चँवर धारण करते हैं। भेड़ पर चढे हुए हैं। उनके चार सींग हैं। बाल सूर्य के समान उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलों से सुशोभित हैं। इस प्रकार अग्नि के स्वरूप का ध्यान करके होम कर्म प्रारम्भ करें। दूध, दही, घी और घृत पक्व या तैल पक्व पदार्थ का जो हाथ से हवन करता है, वह पाप का लिप्त होता है (इन सब का सुवा से होम करना चाहिये)। मनुष्य जो अन्न खाता है, उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं। सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिये हविष्य में तिल का भाग अधिक रखना उत्तम माना गया है। होम में तीन प्रकार की मुद्राएँ - मृगी, हंसी और सूकरी प्रयोग होती हैं। अभिचार-कर्म में सूकरी-मुद्रा का उपयोग होता है और शुभ कर्म में मृगी तथा हंसी नाम वाली मुद्राएँ उपयोग में लायी जाती हैं। सब अङ्गुलियों से सूकरी-मुद्रा बनती है। हंसी-मुद्रा में कनिष्ठिका अङ्गुलि मुक्त रहती है। मृगी-मुद्रा केवल मध्यमा, अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा सम्पन्न होने वाली कही गयी है। पूर्वोक्त प्रमाण वाली आहुति को पाँचों अङ्गुलियों से लेकर उसके द्वारा अन्य ऋत्विजों के साथ हवन करें। हवन सामग्री में दही, मधु और घी मिलाया हुआ तिल होना चाहिये। पुण्य कर्मों में संलग्न होने पर अपनी अनामिका अङ्गुलि में कुशा की पवित्री अवश्य धारण करनी चाहिये।

### 1.1 स्थालीपाक यज्ञ से सम्बन्धित कुछ सामान्य सर्वदापालन करने वाली विधि और उसके अन्तर्गत कुछ सामान्य पात्रों का सामान्य अर्थ-

उदाहरण - हवन के लिए किसी वेदी में जो अग्नि की स्थापना की जाती है उसे विधि का यहाँ सामान्य वर्णन किया जा रहा है। हवन कर्ता स्नान करके अच्छी तरह से हाथ पैर धोकर कर यज्ञ के लिए जो आसान है उसे आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ कर, उसके बाद 27 अङ्गुली की वेदी का निर्माण कर लें। उसके बाद तीन कुशों से वेदी का सम्मार्जन करके गोबर और पानी से उस स्थान को लीप कर श्रुवमूल से या किसी काष्ठ के टुकड़े से तीन रेखाएँ खींचकर उन रेखाओं से उठी जो धूली है, उस धूली को अनामिका और अङ्गुष्ठ से ऊपर चढ़कर उन कुशों को इशान कोड़ में छोड़ दें। उसके बाद उस स्थान पर पानी छिड़क कांस या तांबे के बर्तन में आग लेकर वेदी के बीच में अग्नि का स्थापना करें। वेदी के दाहिनी ओर ब्रह्मा के लिए पवित्र कुशा का आसान बिछा दें। फिर यज्ञ के लिए प्रणिता नामक काष्ठ पात्र को बाएँ हाथ में रखकर उसको पवित्र जल से भर दें। पुनः वेदी के चारों तरफ कुशा को फैला दें। पुनः यज्ञ के लिए उपयोगी सामग्रियों को इकट्ठा कर ले उसके बाद पवित्र नामक कुशों को दो खण्डों में विभाजित कर उन विभाजित कुशों में से दो तरुण कुशों पर आगे से एक बित्ता छोड़ कर उसके टुकड़ों को प्रोक्षणी पात्र के जल से सींचकर प्रोक्षणी पात्र का संस्कार कर यज्ञ में उपयोग होने वाले वस्तुओं को जल से सींचकर आज्यस्थाली में घी डालकर उसे प्रज्वलित अग्नि पर उसके चारों ओर जलती लकड़ी को घुमाकर पिघला दें।

### हवन के लिए की जाने वाली लड़कियों का प्रयोग

हवन कार्य में प्रयोग किए जाने वाले कुशों का सङ्ग्रह, लकड़ियाँ हवन की आग को प्रज्वलित करने की लड़कियाँ स्मृत्यर्थसार के अनुसार ये लकड़ियाँ -पलाश पलाश खैर पीपल आदि की होती है। यह लकड़ियाँ का एक एक बित्ते अर्थात् 12 अङ्गुलियों की सूची या गीली पकी और बराबर से कटी हुई होनी चाहिए। घून लगने वाले लड़कियों का प्रयोग सर्वथा वर्जित है

उपयमनकुशा अग्नि को यज्ञीय भूमि में स्थापित करने वाले कुश, श्रुवा= लकड़ी का बना हुआ यज्ञ का चम्मचा जिससे हवन कुंड में आहुतियाँ दी जाती है। गाय का घी, चावल से भरे मिट्टी के बर्तन में दक्षिणा एवम् गौ।

प्रोक्षण कर्म ऊपर उठे हुए हाथों से की जाती है तथा अभ्युक्षण कर्म नीचे झुके हुए हाथों से की जाती है। यथा-

**उत्तानेन तु हस्तेन प्रोक्षण समुदाहतम्।  
तिरश्चावीक्षणं कुर्या नीचै रभ्युक्षणं कृतम्।।**

ब्रह्मा का स्वरूप -

ब्रह्मा यज्ञीय कार्य सम्पादन के निमित्त कर्मकाण्ड में नैष्ठिक को ब्रह्मा कहा जाता है। यज्ञ के सभी कार्यों के करने में जो दक्ष है उसको ही ब्रह्मा बनाना चाहिए यदि ऐसा कोई नहीं है तो कुशो से निर्मित ब्रह्मा का ही वरण कर लेना चाहिए।

**प्रोक्षणी कर्म -**

प्रणिता के जल को प्रोक्षणी पात्र में तीन बार जल डालिए। फिर प्रणिता के जल से प्रोक्षणी पात्र का मार्जन करें। इसके बाद वेदी के मध्य में अग्नि स्थापन करें।

प्रोक्षणी कर्म के क्रम में पहले प्रोक्षणीपात्र को प्रणीता पात्र के पास रखकर प्रणीता का पवित्र जल उस पर क्षिड़क कर तथा इकट्ठा किए गए यज्ञ के लिए सभी सामग्रियों पर जल क्षिड़क कर यज्ञाग्नि और प्रणीता पात्र के बीच में प्रोक्षणी पात्र को रख दें। जल सिंचन के पूर्व दाहिने हाथ से प्रोक्षणी पात्र को बाएँ हाथ में रखकर ही जल छिड़कना चाहिए जल सिंचन के क्रम में प्रणिता के जल को, प्रोक्षणीपात्र में तीन बार डालें। पुनः प्रणीता के जल से प्रोक्षणी पात्र का क्षीड़काव करें। पुनः यज्ञाग्नि के पीछे रखे घी को आज्यस्थाली में आग पर घी को पिघलाने के लिए रखकर पर्यग्नि करें अर्थात् जलती हुई समिधा को लकड़ी को चरुपात्र आज्यस्थाली के चारों ओर घूमकर घी को पिघला दें।

पूर्व में वर्णित श्रुवा को आग में तपाकर अधोमुखी सामने के भाग को आगे की ओर मुड़े हुए अंश को होम के अग्नि में तपा कर उसे बायें हाथ में लें। पुनः दाहिने हाथ से सम्मार्जन कुश से सम्पूर्ण श्रुवा को झाड़ पोंछ लें। फिर उस पर प्रणीता का जल छिड़क दें। फिर पूर्व वर्णित क्रम से उसे आग में तपाकर यज्ञाग्नि की दाहिनी ओर रख दें।

**आज्यस्थाली शब्द का अर्थ**

'आज्य'शब्द का अर्थ है घी अर्थात् हवन के लिए रखा गया गाय का घी और थाली का अर्थ होता है पात्र वर्तन जिसमें घी रखा गया हो उस पात्र को आज्यस्थाली कहते हैं।

हवन के लिए अग्नि पर रखा गया जो घी है। उस घी को अग्नि से बाहर निकाल कर पवित्र नामक दो कुशों से घी का परिशोधन करना चाहिए अर्थात् घी को अच्छी तरह से देखकर प्रोक्षणी पात्र और रखें जल को भी अच्छी तरह देखना चाहिए। अग्नि के पास रखें कुशों को दाएँ हाथ में उठाकर बाएँ हाथ में ले लें। लड़कियों में घी लगाकर खड़े होकर लड़कियों को हवन कुंड में डाल दें।

और बिना किसी मन्त्र उच्चारण के बिना चारों ओर चुपचाप जल के छीटे देनी चाहिए। अर्थात् वेदी के चारों ओर ईशान कोण से लेकर दक्षिणावर्त तक जल गिरा कर आगे बतलाई गई विधि से हवन करना चाहिए।

### एष एव विधिर्यत्र क्वचिद् होम-।

जहाँ कहीं भी हवन करनी हो तो यही विधि अपनानी चाहिए। अर्थात् एष एव परिसमूहन पर्युक्षण पर्यन्त हवन की सामान्य यही विधि है यत्र क्वचिद् होम- जहाँ कहीं भी हवन किया जाता है। विधि शब्द के बाद यहाँ पर एवम् शब्द का प्रयोग है। जिसका अभिप्राय है मन्त्र उच्चारण के बिना ही विधि का सम्पादन करना चाहिए।

यत्र क्वचिद् से अभिप्राय है हवन विधि से ही, अर्थात् कहीं भी लौकिक कर्म में, स्मार्त या अग्नि कर्म में हवन का विधान है उसका विधि यही होगा।

### गृह्याग्नि की स्थापना विवाह के समय करनी चाहिए।

पवित्र अग्नि को घर में स्थापना करना चाहिए। गृहशाला की अग्नि और उसकी स्थापना विवाह के समय अर्थात् चतुर्थी कर्म के बाद ही गृह्याग्नि की स्थापना का विधान है क्योंकि चतुर्थी कर्म में पूर्व पत्नी भार्या नहीं बनती है और सभार्या व्यक्ति है अग्न्याधान करने का अधिकारी है।

### गृह्याग्नि स्थापना करने के लिये आचार्यों का मत

इस विषय में आश्वलायन प्रभृति कतिपय आचार्यों का मत है कि वैवाहिक अग्नि ही औपासनाग्नि है इनके मत में विवाह काल में स्थापित वेदी वाले विवाह -होम को ही पत्नी और होम का संस्कर्ता मानते हैं। किन्तु हरिहर का कहना है कि परस्कर गृह्यसूत्रम् में 'आवसध्याधानं दारकाले' अलग ही विधान किया है। अतः इस संस्कार के द्वारा सुसंस्कृत अग्नि ही औपासनाग्नि है।

### कर्काचार्य और जयराम का विचार

कुछ आचार्य का विचार है कि अग्न्याधान भाइयों के बीच पिता की मृत्यु के बाद दाएँ विभाजन के समय ही होना चाहिए। भ्रातृहीन व्यक्ति विवाह के बाद तथा अनेक भाई वाले पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के समय ही अग्न्याधान करना चाहिए। क्योंकि भर्तृ यज्ञ भाष्य के अनुसार- 'पिता प्रत्तामादाय निष्क्रामति' (पा०००११४।१५) इस तरह के अग्न्याधान काल के सन्दर्भ में दो परस्पर विरोधी मतों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर्काचार्य और जयराम का इस प्रकार है- अभ्रातृकस्य दारकाले भ्रातृमतो दाय्याद्य काले

बहुपणो- अत्यधिक पशुओं से समृद्ध वैश्य के घर से आग लाकर पूर्व लक्षित विधि से अग्नि का स्थापना करें।

### गोभिल गृह्यसूत्र के आचार्यों का मत

अग्नि स्थापन के विषय में गोभिल गृह्यसूत्र में कुछ आचार्यों का विचार है कि यदि वैश्य के घर का अग्नि उपलब्ध न हो तो गाजे बाजे के साथ वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए भड़भूजे अथवा बहुयाजी ब्राह्मणों के घर से भी अग्नि को लायी जा सकती है। उसके बाद पञ्च भूमि संस्कारों से सुसंस्कृत यज्ञ के लिए भूमि मंडप में उस अग्नि को रखकर ब्रह्मा वरण तथा ब्राह्मण

भोजन के बाद यथा बिहित कर्म करना चाहिए।

### कर्मणि तत् चातुष्प्राश्यम्

चार याज्ञिकों के भोजन योग्य कर्म को चातुष्प्राश्यम् कहते हैं इसके लिए जो पाक क्रिया है उसे भी चातुष्प्राश्यम् पचन कहते हैं। उसी की तरह सभी कृत्य करने चाहिए इस पर कर्काचार्य का विचार है कि पारस्कर गृह्यसूत्रकार ने पूर्व पक्ष के रूप में इसे उपन्यस्थ किया है यह इनका सिद्धान्त नहीं है

श्रौताधान धान में चातुष्प्राश्यपचन देखा जाता है। इसी तरह यहाँ पर 16-16 में भी अग्रिमात्र का उपाधान करना चाहिए।

### अरणि मंथन का विधान

अरणि मंथन अग्नि से ही यज्ञ करने का विधान है। अर्थात् यज्ञ की आग उत्पन्न करने के लिए अरणि मंथन का विधान करना चाहिए।

अरणि मंथन किसे कहते हैं

समी की लकड़ी का टुकड़ा जिसके घर्षण से यज्ञ के समय पर अग्नि उत्पन्न की जाती है उसे अरणि मन्थन कहते हैं।

### अरणि मंथन के लिए लकड़ी

शमी के पेड़ पर स्वत उत्पन्न पीपल की वह डाल जो पूर्व की ओर फैली हो, अग्नि मंथन के लिए उसी की लकड़ी से अरणि बनाई जाती है। यह अरणि 24 अङ्गुल लंबी, अङ्गुल चौड़ी, और चार अङ्गुल मोटी होनी चाहिए। जड़ की ओर आठ अङ्गुल तथा आगे की ओर 12 अङ्गुल के भाग को छोड़ कर बीच में चार अङ्गुल में ही चार अङ्गुल में ही अग्नि का निवास होता है। क्योंकि इस ही देवा योनि कहा गया है। अतः इसी तरह के लकड़ी के घर्षण से ही अग्नि को उत्पन्न करनी चाहिए। प्रथम घर्षण के बाद इस नियम को कम किया जा सकता है। अरणि मंथन के क्रम में यह कहा गया है कि सर्वप्रथम यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी को अरणि मंथन करना चाहिए। उसके बाद किसी बलवान ब्राह्मण को करना चाहिए।

अरणि के चार अवयव माने गए हैं-1-उत्तरारणि, 2-आविली, 3-नेत्र, 4-और रस्सी। आविली नेत्र की सहायता से उत्तरारणि को अधरारणि पर रगड़कर अग्नि प्रज्वलित की जाती है।

### पञ्चमहायज्ञा इति श्रुते-

चातुष्प्राश्य नामक पचनाग्नि किए गए यज्ञ की समान ही पञ्चमहा यज्ञ करनी चाहिए। यह वेद में कहा गया है। यह वाक्यार्थ है यह कोई सिद्धान्त पक्ष नहीं है। क्योंकि यह न तो उपदेश वाक्य है और न अतिदेश वाक्य है।

अग्नि में आधारित देवताओं के लिए पतीली या भगोने में चावल पकाकर आज्य भाग नामक आहुतियों को देकर उसके बाद घी की आहुतियाँ देनी चाहिए।

अग्नि के लिए आधारित चार देवता हैं 1-पवमान, 2- पावक, 3- सूची, 4- नदिति।

निम्नलिखित मन्त्र से अग्नि में घी का स्वाहाकार करें-

ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये न नमम्। इसका मन में ही उच्चारण करें। इसके बाद ॐ इन्द्राय स्वाहा इदम् इन्द्राय न नमम्। ॐ अग्नये स्वाहा इदम् अग्नये न नमम्। ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय न नमम्। इस तरह आज्य भाग की आहुति से हवन कर श्रुवा में जो शेष घी लगा हुआ है उसको प्रोक्षणी पात्र में डाल दें।

त्वन्नो अग्नो आठ मन्त्रों का यह प्रत्येक मन्त्र है सम्पूर्ण मन्त्र नीचे दिए जा रहे हैं-

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवयासिसीष्टि-।

यजिष्ठो बह्वितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुख्यस्मत्

स्वाहा इदम् अग्नि वरुणाभ्यां न मम (यजु०2113)

अर्थ (ऋषि वामदेव तृष्टुप् छन्द अग्नि और वरुण देवता)

हे अग्नि देव आप सब कुछ जानते हैं यज्ञ आदि सम्पूर्ण कर्मों के प्रधान है आप हविष पहुंचाने वाले है और कांतिमान है आपकी कृपा से वरुण देव मुझ पर प्रसन्न हो आप हमारे सम्पूर्ण दुर्भाग्य को हमसे दूर कर दो

२. स त्वं नौऽग्नेऽवमो संबोती नेर्दिष्टोऽअस्याऽउ पसो व्युष्टौ।

अव'यक्ष्व नो वरुणरराणो बीहि सृ'डीकथं सुहवो नऽएधि॥

अर्थात् - हे अग्निदेव ! तुम इस उषःकाल में हमें समृद्धि-सम्पन्न करने के लिए अपने रक्षा-साधनों से युक्त होकर हमारे निकट आओ. हमारी रक्षा करो। हविष प्रदान करते हुए हमारे राजा वरुण को तृप्त करो। तुम हमारी सुखकारी हवि का भक्षण करो। तुम्हारा हम भलीभाँति आह्वान करते हैं।

३. इमं में वरुण श्रधी हवमद्या चे मृळ्या त्वामवस्युरार्चके॥ (यजु. २१-१ )

अर्थात् - ऋषि शुकःशोप, गायत्री छन्द, वरुणदेव - हे वरुणदेव ! तुम मेरे इस आह्वान को सुनो और हमें सर्वविध सुख प्रदान करो। अपनी रक्षा के निमित्त मैं तुम्हारा आह्वान कर रहा हूँ।

४. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा बन्दमान- स्तदा शांस्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्यरुशंसस मानऽआयुः प्रमौषीः॥ -यजु. २१-२।

अर्थात्- ऋषि वही, तृष्टुप् छन्द, वरुणदेवता - हे वरुणदेव ! स्तुति करते हुए मैं तुमसे धन-पुत्र समन्वित उस फल की याचना करता हूँ, जिसकी अभिलाषा हवि- प्रदाता यजमान करता है।

५. ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशाः वितता महान्तः। तेमिं अद्य सवितोऽत विष्णु- विश्वे सुश्वन्तु मरुतः स्वर्काः॥

अर्थात्- ऋषि वामदेव, जगती छन्द, वरुणदेव - हे वरुणदेव ! तुम्हारे पास बहु- संख्यक, असंख्य, यज्ञ से उत्पन्न, विस्तृत और अपरिहार्य हैं। हम उनमें बंधे हैं। सर्वपूज्य सवितृदेव, विष्णु और मरुद्गण हमें उन पाशों से मुक्त करें।

६. अयाश्चाग्नेस्यनभिश्चिस्तपाच-सत्यमित्वमया असि अयानो यज्ञं वहास्य-यानो घेहि भेषजम्॥

अर्थात्- ऋषि वामदेव, त्रिष्टुप् छन्द, अग्निदेवता- है अग्निदेव ! तुम भीतर बाहर सर्वत्र स्थित हो, अभिशापहीन जनों को आत्मसात् कर उनका शोधन करते हो, प्रायश्चित्त-अनुष्ठान के द्वारा उनके कर्म-पालक हो, यह भी सत्य है कि तुम शुभ-प्रणेत हो, इसीलिए तुम हमारे शुद्ध हृदयों में अवस्थित होकर यज्ञ का वहन करते हो-हमें भेषज्य प्रदान करो।

७. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद-ववावमं वि मध्यमधथाया अथा वयमर्मादित्य व्रते तवा-नाङ्गसोऽदित्ये स्यामा॥ (यजु. १२-१२ ) अर्थात्- ऋषि शुनःशोप, त्रिष्टुप् छन्द, वरुणदेव - वरुणदेव ! आप प्राणियों को बन्धनों और सन्तापों से मुक्त करनेवाले हैं। हमारे शिर, कण्ठ आदि उत्तमाङ्गों तथा कटि आदि अघस्थ अवयवों में पड़े अपने पाश-बन्धन से हमें छुटकारा दीजिए जिससे अपराध-मनोवृत्ति से मुक्त होकर हम तुम्हारे अनुष्ठानों में प्रवृत्त हो सकें। हे अदिति- नन्दन ! वरुण ! आप हमें दैन्यरहित अखण्ड ऐश्वर्य के योग्य बनाइए।

८. भवतं नः समनसौ सर्चेतसावरे पसौं। मा यज्ञं हि सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिचौ भवतमद्य नः॥ (यजु. ५-३)

अर्थात्- ऋषि प्रजापति, पक्तिछन्द, जातवेदस्- हे जातवेदस् ! आप दोनों एकामन मन और समान चैतन्ययुक्त हैं। हमारे प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिए आप हमसे अपराध हो जाने पर भी क्रोध न करें; हमारे यज्ञों को नष्ट न करें; यजमान का वध न करें-आप हमारे लिए मंगलमय हों।

९. अयास्यग्नेर्वषट्कतं यत्कर्मणात्यरीरिचं। देवागातु विदः॥

अर्थात्- गौतम ऋषि, गायत्री छन्द, गातुविद् देव- हे यज्ञवेत्तादेववृन्द ! अग्नि के निमित्त वषट्कार करके मैं यज्ञानुष्ठान का अधिकारी बना हूँ; उससे प्रसन्न होकर आप हम पर निरन्तर कृपालु रहें। तदनन्तर प्रजापति देवता का ध्यान करके मन ही मन, निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए आहुति दें --

6) मौन रहकर-बगैर बोले, “ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम”। स्विष्टकृत् आहुति -- इसके बाद ब्रह्मा द्वारा कुश से स्पर्श किये जाने की स्थिति में (ब्रह्मणान्वारब्ध) निम्न मन्त्र से घी के द्वारा स्विष्टकृत् आहुति दें --

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न ममासंस्रवप्राशन --

हवन होने पर प्रोक्षणी पात्र स घी दाहिने हाथ में लेकर यत्किंचित् पान करें। फिर आचमन करें। मार्जन विधि -- इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र द्वारा प्रणीता पात्र के जल से कुशों के द्वारा अपने सिर पर मार्जन करें।

ॐ सुमित्रया न आप ओषधय- सन्तु।

इसके बाद निम्न मन्त्र से जल नीचे छोड़ें --

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म-।पवित्र प्रति पत्ति -- पवित्रक को अग्नि में छोड़ दें। पूर्ण पात्र दान -- पूर्व में स्थापित पूर्णपात्र में द्रव्य-दक्षिणा रखकर निम्न संकल्प के साथ दक्षिणा सहित पूर्ण पात्र ब्राह्मण-पुरोहित को प्रदान करें।

ॐ अद्य अमुकहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं द्रव्यसहितपूर्णपात्रं प्रजापतिदेवतं ... गोत्राय ... शर्मणे ब्रह्मणे भवते सम्प्रददे। ब्राह्मण स्वस्ति कहकर उस पूर्ण पात्र को ग्रहण करें। प्रणीता विमोक -- प्रणीता पात्र को ईशान कोण में उलटकर रख दें। मार्जन -- पुनः कुशा द्वारा निम्न मन्त्र से उलटकर रखे गए प्रणीता के जल से मार्जन करें। ॐ आपः शिवा- शिवतमा- शान्ता- शान्ततमास्तास्ते कृञ्चन्त् भेषजम्।

उपनयन कुशों को अग्नि में छोड़ दें।

बर्हि होम -- तदनन्तर पहले बिछाये हुए कुशाओं को जिस क्रम में बिछाया गया था, उसी क्रम में उठाकर घी में भिगोयें और निम्न मन्त्र से स्वाहा का उच्चारण करते हुए अग्नि में छोड़ दें -- ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमिता मनसस्पत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धा- स्वाहा। कुश में लगी ब्रह्मग्रन्थि को खोल दें इति

## 1.5 पारिभाषिक शब्दावली

- 1) गार्हपत्याग्नि - गार्हपत्याग्नि (गृहपत्याग्नि, "गृहस्थ की अग्नि"- - वह अग्नि जिसका उपयोग हम घरों में करते हैं। यह अग्नि के प्रमुख रूपों में से एक है। अग्नि का यह रूप विवाह समारोह के बाद घर में लाया जाता है और पारिवारिक अनुष्ठानों का केंद्र होता है। इसे सदैव जीवित रखा जाना चाहिए।
- 2) आहवनीय- यह अग्नि पवित्र अग्नि के तीन प्रकारों में से एक है और गृहस्वामी की शाश्वत अग्नि से ली गई एक पवित्र अग्नि है। गार्हपत्यादाहवनीयं ज्वलन्तमुद्धरेत्।
- 3) आज्यस्थाली- याग में आज्य रखने के पात्र को आज्यस्थाली कहते हैं। आज्यस्थाली में से स्रुवा आज्य जुहू में आठ स्रुवा उपभृत में और चार स्रुवा ध्रुवा में भरने को कहा गया है- स्रुवेणाज्यग्रहणं चतुर्जुह्वा . . . .। अष्टावुपभूति. .। ध्रुवयाञ्च जुहूवत ( का०- श्रो० 2.7.9.10.15)
- 4) सम्मार्जन कुशा - सात शाखा (कुश ) से युक्त कुश सम्मार्जन कुशा होता है।
- 5) प्रोक्षणी-- इस पात्र के माध्यम से हवन कुण्ड को जलप्रसेचित करते हैं। सामान्य अर्थ में समझें तो इस पात्र में जल लेकर हवन वेदी के बाहर निर्देशित मन्त्रों से चारों दिशाओं में जल डालते हैं। जल प्रसेचित करते समय भावना यह रहती है कि अग्नि के चारों ओर शीतलता का घेरा बना रहे, जो हम सबके लिए शान्तिदायी हो।
- 6) उपयमन कुशा - उपयमन कुशा पाँच शाखा (कुश ) का होता है।
- 7) चरू - चरूश्चेद्बृहितंडुला- - चरू का तात्पर्य खीर से है। इसे स्थालीपाक भी कहते हैं। यज्ञ के अन्त में औषधि मिश्रित इस खीर को, चरू को याज्ञिक के हाथों उसकी स्विकृत आहुति दिलवाने के पश्चात् शेष बचे चरू को यज्ञावेश के रूप में उसे खिला देते हैं। इस प्रकार चरू उसे कहते हैं जो हवन कुंड या वेदी के ऊपर पतले तांबे या चाँदी के बर्तन में खीर बनायी जाती है।
- 8) बर्हि - अग्निशाला की वेदि में बिछाये जाने वाले दर्भसमूह को बर्हि कहते हैं। तृणसंज्ञास्तु ये दर्भा एकपत्राः स्मृतास्तु ते। ते बर्हिः संज्ञकादर्भारत्निमात्राधिकाश्च ये। यज्ञपार्श्व परिशष्ट- श्लोक 9



- 9) पुरोडाशपात्री- पुरो वा एतान् देवा अक्रत यत्पुरोडाशानां पुरोडाशत्वम् अर्थात् यज्ञ में देवों ने इसे पहले प्रयुक्त किया इसलिए इसे 'पुरोडाश' कहा जाता है। यज्ञाग्नि पर पकाये हुए हव्य पदार्थ को पुरोडाश कहते हैं और एक वारणकाष्ठ का प्रादेशमात्र चतुरस्र पात्र होता है। इसी पर पुरोडाश रखे जाते हैं। एक कपाल पर श्रुत पुरोडाश को रखने के लिए यही पात्री सबिला होती है। पुरोडाशाख्यपात्री च प्रादेशाश्चतुरस्रिकाः। मध्ये तु दर्पणाकारा मूले दण्डसमन्विताः॥(यज्ञपार्श्व परिशिष्ट- श्लोक 119-120)
- 10) आज्यस्थाली- देवता के निमित्त हवन अथवा याग करने का आज्य जिस पात्र में रखते हैं, उसे आज्यस्थाली कहते हैं। आज्यस्थाली च कर्त्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा। माहेयी वापि कर्त्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च॥(कात्यायनस्मृति - 15/10) प्रणीताः इसमें जल भरकर रखा जाता है। इस प्रणीता पात्र के जल में घी की आहुति देने के उपरान्त बचे हुए घी को "इदं न मम" कहकर छोड़ा जाता है। बाद में इस पात्र का घृतयुक्त होठों एवम् मुख से लगाया है जिसे 'संसव प्राशन' कहते हैं।
- 11) सुचीः इसके माध्यम से यज्ञ अथवा हवन में मिष्ठान की पूर्णाहुति दी जाती है। मिष्ठान की इस आहुति को स्विष्टकृत होम कहते हैं। यह क्रिया यज्ञ अथवा हवन में न्यूनता को पूर्ण करने के लिए की जाती है।
- 12) चरूपपात्र- जिस पात्र में देवता विशेष हेतु निर्दिष्ट हविर्द्रव्य ओदनादि को गार्हपत्य पर रखकर पकाया जाता है, उसे चरूपपात्र कहते हैं। इसका मुँह चौड़ा, पेंदी गोल एवम् आकार पतीला जैसा होता है।
- 13) सुवा-- सुव- स्रवति आज्यं यस्मात्। जिस पात्र से अग्नि पर आज्य की आहुति दी जाती है, उसे ध्रुव कहते हैं। ये एक विशेष लकड़ी की बनी हुई कलछी है। इसके सहारे हम हवनादि में घी की आहुति देते हैं। यह खैर की लकड़ी का अरत्निमात्र लम्बा बनता है। इसमें आज्य लेने के लिए आगे की ओर अङ्गुष्ठपर्वमात्र का गर्त होता है। "खादिरः सुवः" का.श्रौ.सू.- 1/3/3/4 २१ इध्म- पलाश की लकड़ी को काटकर इध्म बनायी जाती है। ये एक हाथ लम्बी होती है। प्रकृतियाग में इनकी संख्या पन्द्रह एवम् विकृतियाग में सत्रह या इक्कीस होती है ("पालाशोऽष्टादशसंख्यारत्निमात्रकाष्ठकः")
- 14) चरुस्थाली - याग के निमित्त गार्हपत्य पर पाचित ओदन चरु है। यहाँ विशेष देवता के लिए विशेष द्रव्य विहित है। इस प्रकार देवता विशेष हेतु चरु बनाकर जिस पात्र में रखा जाता है, उसे चरुपात्र कहते हैं।
- 15) आज्य - तप्त घृत की आज्य कहा गया है। सुवा पात्र से सुची में लेकर आज्य होम किया जाता है। रस रूप द्रव्य को भी आज्य कहा गया है- रस आज्यम् (शत.ब्रा. 3.7.1.13) देवगण आज्य से ही सन्तुष्ट होते हैं-एतद्वै जुष्टं देवाना यदाज्यम् (शत.1.7.2.1) अखण्ड हवन में सूर्यास्त के बाद के प्रत्येक प्रहर में क्रमशः आज्य, सतू, धाना और लाजा से हवन करने को कहा गया है-आज्यसूक्त धानालाजानामेकै जुहोति (का.श्रौ.2.(.4.32)
- 16) उपभृत् - जुहू के नाप और आकार की अश्वत्थ (पीपल) काष्ठ की बनी एक सुची है। जुहू का आज्य समाप्त होने पर इसके आज्य को जुहू में लेकर आहुति दी जाती है- आश्वत्थ्युपभृत् (का.श्रौ. 1.3.3.6) आज्यस्थाली में से चार सुवा आज्य जुहू में आठ सुवा उपभृत् में और चार सुवा ध्रुवा में रखने का विधान है। जुहू के उत्तर में उपभृत् और उसके उत्तर में ध्रुवा पात्र रखे जाते हैं। वास्पत्यम में भी इसे एक सुचि भेद कहा गया है- आश्वत्थे

यज्ञाङ्गपात्रभेदे स्रुचि (वा.पृष्ठ 1233 ) पाणिभ्यां जुहूं परिग्रहोपभृत्या धानम् (आश्व.गृ.1.10.9 )

- 17) कुश (दर्भ) - कुश का प्रयोग याज्ञिक कृत्यों में विशेषतः किया जाता है। चारों दिशाओं में कुशकण्डिका आस्तरण एवम् जल प्रोक्षण के निमित्त इसका प्रयोग होता है। शोधन-कारक होने के कारण इसे जल रूप भी माना गया है- आपो हि कुशा शत.ब्रा. 1.3.1.3। कुश का पर्यायवाची शब्द दर्भ माना गया है। दर्भ को मन्युशमन करने वाला कहा गया है। दर्भ का औषधीय प्रयोग द्रष्टव्य है- उभयं देतदन्नयदर्भा आपश्च होता ओषधयश्च याशत. ब्रा. 7.2.3.2 अपां वा एतदोषधीनीं तेजो यदर्भाः काठ.सं. 30.10 दर्भ की शुद्धता याज्ञिक कृत्य में महत्पूर्ण होती है- ते हि शुद्ध मेध्याः। शत.ब्रा. 7.3.2.3
- 18) जुहू - याग में हविद्रव्य अर्पित करने के निमित्त प्रयुक्त होने वाली स्रुचि को जुहू कहते हैं। हूयतेऽनयेति जुहूः। यह पलाश काष्ठ की, एक अरित्ना (बाहुमात्र नाप की आगे में चार अङ्गुल गर्तवाली और हंसमुखी होती है- यज्ञिये स्रुगाख्ये पात्रभेदे सा च पत्नाशघटिता वा.पृ. 3142। पालाशी जुहू- -(का.श्रौ. 1/3/35 )। पर्णयमी जुहूः भवति (तै.सं.3/5/7/2) इसे यज्ञ का मुख और द्युलोक की उत्पत्तिकारक कहा गया है- जुहूवैयज्ञमुखम् मैत्रा1 सं. 3.1.1। जुह्वेहि घृताची द्यौर्जन्मना। (काठ.मं. 1.11)
- 19) सलाका: इसके माध्यम से यज्ञ अथवा हवन की भस्म धारण की जाती है।

## 1.4 सारांश

स्थालीपाक के अन्तर्गत आज्यस्थाली, चरुस्थाली, पुरोणाश, प्रणीता, प्रोक्षणी आदि यज्ञपात्रों का व्याख्या किया गया एवम् उनके विधियों का सम्यक्तया प्रतिपादन किया गया परिसमूहन से पर्युक्षण तक इस विधि का विस्तार से वर्णन किया गया तथा आवथ्याधान के अङ्गभूत पञ्चवारुण होम का अर्थ सहित प्रतिपादन करते हुए अनन्वारब्ध व्याहृति होम की विधि एवम् स्थालीपाक से हवन किया गया। अग्न्याधेय देवताभ्य- स्थालीपाकं श्रपयित्वाज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति।

## 1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- क) पारस्कर गृह्यसूत्रम् - हरिहर भाष्यसहित सरला, हिंदी व्याख्याकार - डॉ ओम् प्रकाश पाण्डेय, संस्करण प्रथम वि.स.2036, मुद्रक- चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
- ख) भविष्यपुराण-PUBLISHER- GITA, PRESS, GORAKHPUR, Edition - 2014

## 1.7 सहायक पाठ्यसामग्री

- क) आह्निक सूत्रावलि-- Published by Tukaram, Pundalik Shetye, book-seller and publisher, Madhavbag, Bombay No 4. Printed by Ramchandra Yesu Shedge at the "Nirnaya-sagar" Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.
- ख) ग्रह शान्ति - मूललेखक संपादक तथा टीकाकार – पण्डित श्री शिवदत्त मिश्र शास्त्री, संस्करण द्वितीय 2003, प्रकाशक - श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार कचौड़ी गली,

---

## 1.8 बोध प्रश्न

---

- 1) आवसथ्याधान कब करने का विधान किया गया है।
- 2) पञ्चभू संस्कार का विस्तार से उल्लेख करें।
- 3) अग्न्याधान का संक्षेप में वर्णन करें।
- 4) उपयमन कुश कितने होते हैं।
- 5) विस्टर किसे कहते हैं।
- 6) पाकयज्ञ के कितने भेद हैं तथा वे कौन - कौन से हैं।
- 7) स्मार्तकर्म क्या है।
- 8) समिधाएँ कितनी कही गयीं हैं।
- 9) बर्हि शब्द का क्या अर्थ है।
- 10) स्थालीपाक के स्वरूप का प्रतिपादन करें।
- 11) पूर्णपात्र किसे कहते हैं।
- 12) सप्तपाक संस्था कौन - कौन हैं।
- 13) सम्मार्जन कुशों की संख्या का उल्लेख करें।
- 14) ब्रह्मा का आसन किस दिशा में होता है।
- 15) पञ्चभू संस्कार के अन्तर्गत उल्लेखन का कितने बार विधान किया गया है।

ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

---

## इकाई 2 विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म

---

### इकाई की रूपरेखा

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 संस्कार- सामान्य परिचय
  - 2.3.1 संस्कारों की संख्या
  - 2.3.2 संस्कारों का प्रयोजन
  - 2.3.3 भारतीय जीवनपद्धति एवम् संस्कार
  - 2.3.3 भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कार
  - 2.3.4 भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कारों का महत्त्व
- 2.4 विवाह संस्कार
  - 2.4.1 हिन्दू परम्परा में विवाह संस्कार का महत्त्व
  - 2.4.2 विवाह संस्कार का उद्भव एवम् विकास
  - 2.4.3 विवाह के प्रकार
    - 2.4.3.1 पेशाच विवाह
    - 2.4.3.2 राक्षस विवाह
    - 2.4.3.3 गान्धर्व विवाह
    - 2.4.3.4 आसुर विवाह
    - 2.4.3.5 प्राजापत्य
    - 2.4.3.6 आर्ष विवाह
    - 2.4.3.7 दैव विवाह
    - 2.4.3.8 ब्राह्म विवाह
  - 2.4.4 विवाह की सीमाएँ
  - 2.4.5 विवाह का विधि-विधान
- 2.5 गर्भाधान संस्कार
  - 2.5.1 गर्भाधान संस्कार का परिचय
  - 2.5.2 विभिन्न कालों में गर्भाधान संस्कार का स्वरूप
  - 2.5.3 गर्भाधान संस्कार का समय एवम् विधि-विधान
  - 2.5.4 गर्भाधान संस्कार का महत्त्व
- 2.6 पुंसवन संस्कार
  - 2.6.1 पुंसवन संस्कार का परिचय
  - 2.6.2 विभिन्न कालों में पुंसवन संस्कार का स्वरूप

2.6.3 पुंसवन संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

2.6.4 पुंसवन संस्कार का महत्त्व

## 2.7 सीमन्तोन्नयन संस्कार

2.7.1 सीमन्तोन्नयन संस्कार का परिचय

2.7.2 विभिन्न कालों में सीमन्तोन्नयन संस्कार का स्वरूप

2.7.3 सीमन्तोन्नयन संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

2.7.4 सीमन्तोन्नयन संस्कार का महत्त्व

## 2.8 जातकर्म संस्कार

2.8.1 जातकर्म संस्कार का परिचय

2.8.2 विभिन्न कालों में जातकर्म संस्कार का स्वरूप

2.8.3 जातकर्म संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

2.8.4 जातकर्म संस्कार का महत्त्व

## 2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.12 बोध प्रश्नोत्तर

---

## 2.0 उद्देश्य

---

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों को गृह्यसूत्रों में वर्णित संस्कारों से अवगत करवाना है।
- इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी गृह्यसूत्रों के अनुसार विभिन्न संस्कारों के विधि-विधान से परिचित हो सकेंगे।
- इसके माध्यम से भारतीय ज्ञान परम्परा के शास्त्रीय व लौकिक पक्ष में परस्पर सम्बन्ध को विद्यार्थी समझ सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से भारतीय समाज में संस्कारों के महत्त्व एवम् उनसे विधि-विधानों के वैज्ञानिक पक्ष का भी ज्ञान होगा।
- इसके माध्यम से मनुष्य के जीवन के पूर्व से ही किसप्रकार भारतीय परम्परा प्रतिपल जीव के संस्कार पर ध्यान देती है, यह भी जान सकेंगे।

---

## 2.2 प्रस्तावना

---

संस्कार हिन्दू-जीवन का प्रधान अङ्ग है। संस्कार व्यक्ति के उन्नयन व परिमार्जन का माध्यम है एवम् व्यक्तित्वविकास की आधारशिला है। भारतीय परम्परा में जीवन शरीर के सूत्रपात से शरीर के पञ्चतत्त्व में विलीन होने तक सोलह संस्कार से बँधा हुआ है। विवाह संस्कार द्वारा नवदम्पति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं और पुनः सन्तानोत्पत्ति द्वारा सृष्टि-प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। विवाह-संस्कार और गृहस्थाश्रम ही समस्त सामाजिक व धार्मिक क्रियाकलापों का

आधार है। विवाह के अनन्तर सन्तानोत्पत्ति हेतु गर्भाधान संस्कार, उसकी सुरक्षा व पुष्टि हेतु क्रमशः पुंसवन व सीमन्तोन्नयन संस्कार एवम् सुखद व सम्यक् प्रसव तथा प्रसूता व शिशु की रक्षा सुनिश्चित करने हेतु जातकर्म संस्कार सम्पन्न होता है। इस संस्कारों में से प्रत्येक का अपना विशिष्ट महत्त्व है। ये संस्कार ही मानव-जीवन को संस्कृत कर सम्यक् बनाते हैं। इन्हीं द्वारा परिमार्जन से व्यक्ति 'मनुर्भव' को साकार करता है और सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है। इन संस्कारों का धार्मिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। आज स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इनका महत्त्व प्रतिपादित हो रहा है।

## 2.3 संस्कार- सामान्य परिचय

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृञ्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय (सम्+कृञ्+घञ्) से होती है। संस्कार एक ऐसा शब्द है जिसके जिसका अर्थक्षेत्र बहुत विस्तृत है। भारतीय ज्ञान परम्परा में लोक से लेकर शास्त्रों तक 'संस्कार' शब्द के विविध अर्थ प्राप्त होते हैं। यद्यपि उनके अर्थ का मूल एक है परन्तु प्रयोगानुसार उनमें किञ्चित् भिन्नता भी है। प्रो. राजबली पाण्डेय के शब्दों में-

'इसका अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिये किये जाने वाले अनुष्ठानों में से है, जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके', (हिन्दू संस्कार, पृ. 19)

इसप्रकार हम देखते हैं कि 'संस्कार' शब्द का अर्थ कितना विस्तृत है। षोडश संस्कार के माध्यम से व्यक्ति का परिष्कार होता है तथा उसमें विलक्षण गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

यदि शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो 'संस्कार' गृह्यसूत्रों का विषय है। गृह्यसूत्रों में संस्कारों का वर्णन 'गृह्य-यज्ञों' के रूप में किया गया है।

### 2.3.1 संस्कारों की संख्या

गृह्यसूत्रों में वर्णित संस्कारों की संख्या बारह से लेकर अठारह तक है। जिसमें से कि आश्वलायन गृह्यसूत्र में ग्यारह, पारस्कर, वाराह व बौधायन गृह्यसूत्र में तेरह तथा वैखानस गृह्यसूत्र में संस्कारों की संख्या अठारह है। धर्मसूत्रों व स्मृतिग्रन्थों में भी संस्कारविषयक विस्तृत सामग्री प्राप्त होती है।

यद्यपि विभिन्न ग्रन्थों में संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न बतायी गयी है परन्तु वर्तमान में संस्कारों की संख्या सामान्यतः सोलह मानी गयी है- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उनपनय, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह एवम् अन्त्येष्टि।

गृह्यसूत्रों में इनका वर्णन भिन्न रूप में प्राप्त होता है यद्यपि अनेक संस्कार वहाँ भी यथावत् रूप में उपस्थित हैं।

### 2.3.2 संस्कारों का प्रयोजन

भारतीय जीवनव्यवस्था में संस्कारों का प्रयोजन बहुत व्यापक है जो व्यक्ति से लेकर इस सृष्टि तक को प्रभावित करता है। संसारों की क्रियाविधि में भी व्यक्ति के अस्तित्व से लेकर समस्त

प्रकृति का अस्तित्व समाहित है। इस अर्थ में इसका प्रयोजन भी अनेक स्तररीय है। स्थूल स्तर पर तो यह सामाजिकता बढ़ाने तथा व्यक्तित्व-परिमार्जन हेतु साधन है। सूक्ष्म अर्थ में यदि देखें तो संस्कार के माध्यम से व्यक्ति का इहलोक व परलोक व्यवस्थित होता है। संस्कारों के माध्यम से दोषों का शोधन होकर व्यक्ति का शारीरिक व मानसिक विकास होता है। संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति में विभिन्न गुणों का विकास होता है। संस्कार से मानव सच्चे अर्थ में मानव बनता है तथा मानवता को पोषित करता है। संस्कारों का प्रधानप्रयोजन जीवन से अशुभ प्रभावों को दूरकर, उसके उत्पत्ति काल से ही दोषों का परिमार्जन कर उसे सर्वविध पुष्ट करना है।

### 2.3.3 भारतीय जीवनपद्धति एवम् संस्कार

संस्कार भारतीय जीवनपद्धति का एक प्रधान अङ्ग हैं। संस्कारों के अवसर पर की जाने वाली विभिन्न क्रियाएँ भारतीय मनीषा के समग्रचिन्तन के सबसे सशक्त पक्ष की परिचायिका है जहाँ वे व्यक्ति और ब्रह्माण्ड में तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। संस्कार इस बात की संपुष्टि भी हैं कि हम ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं अपितु उनकी ही शक्ति हैं बस आवश्यकता है उस शक्ति के उद्भावन की। संस्कारों के माध्यम से हिन्दू-जीवनपद्धति की सांस्कृतिक चेतना का अद्भुत विकास हुआ है तथा उसकी नैतिक व आध्यात्मिक चेतना प्रखर हुयी है। व्यक्तित्वनिर्माण की आरम्भिक प्रयोगशाला व प्रयोगविधि के रूप में हम संस्कार को देख सकते हैं।

### 2.3.4 भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कारों का महत्त्व

भारतीयज्ञानपरम्परा में संस्कारों का वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक व आध्यात्मिक महत्त्व है। वैयक्तिक महत्त्व यह है कि इससे व्यक्ति का संस्कार होता है, उसके व्यक्तिगत दोष दूर होते हैं। व्यक्तिगत दोषों के परिमार्जन द्वारा व्यक्ति की सामाजिक स्थिति सुदृढ़ होती है तथा समाज के प्रति वह अपने उत्तरदायित्व को समझता है। संस्कारों के माध्यम से सांस्कृतिक तत्त्वों का अबाध प्रवाह सुनिश्चित होता है परिणामस्वरूप व्यक्ति को नैतिक व आध्यात्मिक बल प्राप्त होता है।

---

## 2.4 विवाह संस्कार

---

विवाह, गर्भाधान, पुंसवन व जातकर्म संस्कारों में गर्भाधान, पुंसवन व जातकर्म संस्कार व्यक्ति के जीवन के आरम्भिक संस्कार हैं। विवाह संस्कार जिसके केन्द्र में है। क्योंकि गृहस्थाश्रम समाज का आधार होने के कारण विवाह संस्कार द्वारा ही अन्य संस्कारों का मार्ग प्रशस्त होता है।

### 2.4.1 हिन्दू परम्परा में विवाह संस्कार का महत्त्व

भारतीय जीवन में आश्रमव्यवस्था का बहुत महत्त्व है। जीवन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास इन चार आश्रमों में वर्गीकृत है। अध्ययनोपरान्त द्वितीय आश्रम है-गृहस्थाश्रम। जो कि अन्य सभी आश्रमों, क्रियाकलाओं व गतिविधियों का मूल है। इसमें प्रवेश विवाह संस्कार के माध्यम से होता है जो कि संस्कारों में सर्वस्वीकृत व प्राचीन संस्कार है जिसका आज भी प्रवाह बना हुआ है। प्रो. राजबली पाण्डेय के अनुसार-

‘विवाह का हिन्दू संस्कारों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अधिकांश गृह्यसूत्रों का आरम्भ विवाह संस्कार से होता है, क्योंकि यह समस्त गृह्ययज्ञों व संस्कारों का उद्गम अथवा केन्द्र है। (हिन्दू संस्कार, पृ. 195)

### 2.4.2 विवाह संस्कार का उद्भव एवम् विकास

विवाह संस्कार का विकास वैदिक काल में हो चुका था। ऋग्वेद (10/85) तथा अथर्ववेद (14.1.2) में विवाह संस्कार का वर्णन प्राप्त होता है। विवाहसंस्कार को हिन्दू-जीवनपद्धति में एक यज्ञ माना गया है। विवाह संस्कार के माध्यम से गृहस्थ जीवन में प्रवेश न करने वाले व्यक्तियों को अयज्ञिय अर्थात् यज्ञहीन कहा गया है-

**अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2.2.26)**

विवाह संस्कार का उद्देश्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सन्तानोत्पत्ति करना था। अतः तीन ऋणों में से पितृऋण से मुक्ति हेतु विवाह का विशेष महत्त्व था। ब्रह्मचर्य से ऋषिऋण, यज्ञ से देवऋण व सन्तान के जन्म से पितृऋण से मुक्ति मिलती है-

**जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिरृणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः। (तैत्तिरीय सं. 6/3/10/5)**

विवाह संस्कार के उद्भव एवम् विकास के क्रम में सर्वप्रथम वेदों में इसका सुदृढ़ व विकसित रूप दिखायी देता है। इस सन्दर्भ में प्रो. राजबली पाण्डेय लिखते हैं कि -

‘ऋग्वेदकालीन समाज में परिवार-संस्था दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित हो चुकी थी, जो यौन सम्बन्धों की प्राग्वैवाहिक स्थिति में सम्भव नहीं थी। वैदिक साहित्य में यौन सम्बन्धों की स्वेच्छाचारिता का कोई भी उदाहरण नहीं मिलता। ... अस्थायी यौन सम्बन्धों का संकेत न तो वेदों और न गृह्यसूत्रों में ही मिलता है। उनमें जिन विवाहों का वर्णन है वे नियमित तथा स्थायी थे। अस्थायी विवाह का एकमात्र उदाहरण ऋग्वेद के 10.59 में उर्वशी तथा पुरूरवा के आख्यान में प्राप्त होता है।’ (हिन्दू संस्कार, पृ. 201)

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में स्थायी व नियमित विवाह समादृत है। हिन्दू परम्परा में आठ प्रकार के विवाह बताये गये हैं जिनमें ब्राह्म विवाह सबसे प्रचलित और प्रशस्त है। वर्तमान में ब्राह्म व आसुर ये दो प्रकार के विवाह समाज में प्रचलित हैं।

### 2.4.3 विवाह के प्रकार

हिन्दू विवाह के आठ प्रकार हैं- ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच-

**ब्राह्मो दैवस्तथा आर्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।**

**गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ (मनुस्मृति, 3.21)**

प्रधानतः स्मृतिसाहित्य व आश्वलायन-गृह्यसूत्र में इन आठों प्रकारों का वर्णन प्राप्त होता है। मानव-गृह्यसूत्र व वाराह गृह्यसूत्र में केवल ब्राह्म तथा शुल्क (आसुर) इन दो प्रकारों का ही उल्लेख है। स्मृतियों ने विवाह के प्रथम चार प्रकारों को प्रशस्त तथा अन्तिम चार को अप्रशस्त माना है। ‘जिनमें प्रथम सर्वोत्तम था, पञ्चम तथा षष्ठ प्रकार किसी प्रकार सहा थे तथा



अन्तिम दो वर्जित थे। किन्तु वे सभी वैध माने जाते थे। (हिन्दू संस्कार, पृ. 203)

विवाह, गर्भाधान, पुंसवन,  
सीमन्तोन्नयन, जातकर्म

### 2.4.3.1 पैशाच विवाह

पैशाच विवाह के अन्तर्गत वर छल-कपट द्वारा कन्या पर अधिकार प्राप्त करता था। इस विवाह को सर्वाधिक अप्रशस्त माना गया है -

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहोयत्रोपगच्छति।

स पापिष्ठौ विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ (मनुस्मृति, 3.34)

यह विवाह सोती हुयी कन्या का अपहरण करके होता था -

सुप्तानां प्रमत्तानां वापहरेत् स पैशाचः।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/6/1

यह विवाह का सर्वाधिक असभ्य व बर्बर प्रकार था, अतः इसे अमान्य कर दिया गया।

### 2.4.3.2 राक्षस विवाह

बलपूर्वक कन्या से विवाह करना राक्षस विवाह है। मनुस्मृति के अनुसार रोती-बिलखती कन्या का, उसके सम्बन्धियों को मारकर अथवा क्षत-विक्षतकर बलपूर्वक हरणकर विवाह करना राक्षस विवाह है-

हृत्वा भित्त्वा च शीर्षाणि रुदतीं रुदद्भ्योहरेत् स राक्षसः।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/6/1

इस विवाह में कन्या और उसके परिजनों की स्वीकृति न होकर बलपूर्वक कन्याहरण होता था। इसीलिये इसे अप्रशस्त व वर्जित माना गया है। इस विवाह का उद्भव युद्ध से माना जाता है।

### 2.4.3.3 गान्धर्व विवाह

आश्वालायन गृह्यसूत्र के अनुसार 'विवाह का वह प्रकार, जिसमें पुरुष और स्त्री परस्पर निश्चय कर, एक दूसरे के साथ गमन करते हैं, गान्धर्व कहलाता है।'-

मिथः समयं कृत्वोपयच्छेत स गान्धर्वः।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/6/1

हारीत और गौतम के मतानुसार विवाह का वह प्रकार जिसमें कन्या स्वयं अपने पति का चुनाव करती है, गान्धर्व कहा जाता है। मनुस्मृति के अनुसार जब कन्या और वर काम के वशीभूत होकर परस्पर संयोग करते हैं, तो विवाह के उस प्रकार को गान्धर्व विवाह कहते हैं -

इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।

गान्धर्व- स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः॥, (मनुस्मृति, 3.32)

स्मृतियाँ प्रायः विवाह के इस प्रकार को धार्मिक व नैतिक आधार से अप्रशस्त मानती हैं परन्तु कतिपय विद्वान् इसे प्रशस्त भी मानते हैं। उनका तर्क है कि इसके मूल में पारस्परिक आकर्षण और प्रेम निहित है। शनैःशनैः हिन्दू समाज से विवाह का यह प्रकार लुप्त हो गया।

### 2.4.3.4 आसुर विवाह

गृह्यसूत्रों में आसुर विवाह को गन्धर्व विवाह की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। इस विवाह में वर कन्या तथा उसके सम्बन्धियों को यथाशक्ति धन प्रदानकर, स्वच्छन्दतापूर्वक कन्या से विवाह करता है -

**ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै शक्तिः।**

**कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरोधर्म उच्यते॥ (मनुस्मृति, 3.31)**

इसप्रकार के विवाह में धन की निर्णायक भूमिका होती थी। -

**धनेनोपतोष्योपयच्छेत स आसुरः।, आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1/6/1**

यह एक प्रकार का क्रय-विक्रय आधारित विवाह था।

आरम्भ में विवाह में क्रय-विक्रय की प्रथा को दोषयुक्त नहीं माना जाता था परन्तु कालान्तर में समाज में इसके प्रति हीनता का भाव उत्पन्न होने लगा।

### 2.4.3.5 प्राजापत्य विवाह

इस विवाह के अन्तर्गत पिता द्वारा कन्या का पाणिग्रहण योग्य वर के साथ किया जाता था। जिसमें यह भावना निहित होती थी कि वर-कन्या दोनों अपने नागरिक व धार्मिक कर्तव्यों का साथ-साथ पालन करेंगे। आश्वलायन गृह्यसूत्र में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है कि विवाह का वह प्रकार जिसमें 'तुम दोनों धर्म का साथ-साथ आचरण करो' यह आदेश दिया जाता है, वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है-

**सह चर्म चरतं इति प्राजापत्यो।, आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1/6/1**

गौतम और मनु को भी यही अर्थ अभिप्रेत है। 'प्रजापति' नाम से ही यह अभिव्यक्त होता है कि इसके माध्यम से नवदम्पति प्रजापति के प्रति अपना ऋण चुकाते थे तथा सन्तानोत्पत्ति व उसके पालन-पोषण हेतु इस बन्धन में बँधते थे। इसमें पति और पत्नी दोनों के अधिकार समान रूप से सुरक्षित रहते थे। 'किन्तु हिन्दू धारणा के अनुसार यह प्रथम तीन प्रकारों की अपेक्षा निम्नतर है। इसका कारण यह है कि यहाँ दान स्वतन्त्र न होकर शर्त या समय के बन्धन में बँधा हुआ है, जो कि हिन्दुओं की दान-सम्बन्धी धार्मिक धारणा के विपरीत है। तथापि यह प्रकार प्रशस्त है।' (हिन्दू संस्कार, पृ.214)

### 2.4.3.6 आर्ष विवाह

गृह्यसूत्रों में आर्ष विवाह को प्राजापत्य विवाह की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। इस विवाह के अन्तर्गत कन्या का पिता वर से यज्ञादि धर्मविहित कार्यों को सम्पन्न करने के लिये एक अथवा दो जोड़ी गाय प्राप्त करता था। इस सन्दर्भ में आश्वलायन, बौधायन तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्रों का कथन है कि जब कोई युवक कन्या के पिता को एक जोड़ी गाय प्रदान कर कन्या से विवाह करता है तो वह विवाह आर्ष विवाह कहलाता है। -

**गोमिथुनं दत्त्वोपयच्छेत स आर्षः।, आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1/6/1**

इस प्रक्रिया में गाय की जोड़ी प्राप्त करने का उद्देश्य यज्ञ कार्य ही होना चाहिये। पहले विवाह के इस प्रकार को श्रेष्ठ माना जाता था परन्तु कालान्तर में गोमिथुन के नाममात्र के आदान को भी

कन्यादान के विपरीत माना जाने लगा। मनु ने कहा है कि भले यह गोमिथुन का आदान अल्प हो परन्तु यह विक्रय ही है और यह अनुचित है।

### 2.4.3.7 दैव विवाह

दैव विवाह को आर्ष विवाह की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। इसके अन्तर्गत पिता कन्या को अलंकृत करके अपने द्वारा किये जा रहे यज्ञ के ऋत्विज् को दे देता था-

**ऋत्विजे वितते कर्मणि दद्यादलङ्कृत्य स दैवः।** आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1.6/1

**आर्षे दुहितृमते मिथुनौ गावओ देयौ॥**, आपस्तम्ब धर्मसूत्र

इसमें कन्या दक्षिणा के रूप में दी जाती थी। विवाह का यह प्रकार दैव इसलिये कहलाता है क्योंकि यह दैवयज्ञ के अवसर पर किया जाता था। परवर्ती काल में यज्ञिय धर्म में हास के साथ ही विवाह का यह प्रकार अप्रचलित हो गया।

### 2.4.3.8 ब्राह्म विवाह

ब्राह्म विवाह सबसे समादृत विवाह का प्रकार है। इसे ब्राह्म इसलिये कहते हैं क्योंकि यह एक योग्य विवाह समझा जाता था। इसमें पिता द्वारा विद्वान् तथा शीलसम्पन्न वर को स्वयं आमन्त्रित कर तथा उसका विधिवत् संस्कार कर, उससे शुल्क आदि न स्वीकार कर, दक्षिणा के साथ यथाशक्ति वस्त्राभूषणों से अलंकृत कन्या का दान किया जाता था-

**अलंकृत्य कन्यामुदकपूर्वा दद्यादेष ब्राह्मो विवाहः।** आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1/6/1

विवाह का यह प्रकार सर्वाधिक प्रशस्त और सम्मानित माना जाता है। इसमें किसी प्रकार के छल, बल, धन इत्यादि का प्रयोग न होने से यह पूर्णतः सामाजिक शालीनता के विचारों से ओतप्रोत है। इस प्रकार के विवाह का अस्तित्व वैदिक काल से ही था। ऋग्वेद में वर्णित सोम-सूर्या के विवाह को ब्राह्मविवाह का पूर्वरूप माना गया है। विवाह का यह प्रकार आज सर्वाधिक प्रचलित और मान्यताप्राप्त है।

### 2.4.4 विवाह की सीमाएँ

आठ प्रकार के विवाहों में से विवाह भले ही किसी भी प्रकार का हो परन्तु उसकी वैधता हेतु धार्मिक विधि-विधान व क्रियाकलाप अनिवार्य था। वैवाहिक विधिविधानों से विवाह-सम्बन्ध को पवित्रता प्राप्त होती है। अतः विवाह के प्रत्येक प्रकार में अनुष्ठान अनिवार्य था।

'कुल' अथवा परिवार का विचार ऋग्वैदिक काल में था। सप्रवर विवाह का निषेध आपस्तम्ब, कौशिक, बौधायन और पारस्कर गृह्यसूत्रों में प्राप्त होता है। गृह्यसूत्रों में गोत्र का निषेध नहीं है। किन्तु धर्मसूत्रों के समय से ही सगोत्र तथा सपिण्ड विवाह निषिद्ध हो गये थे। (हिन्दू संस्कार, पृ. 224) स्मृतियाँ सगोत्र विवाह को अवैध घोषित करती हैं -

**परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरा तथा।**

**त्यागं कुर्याद् द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणं चरेत्॥**, (पारस्कर गृह्यसूत्र, 1/4-8, पर गदाधर द्वारा उद्धृत, हिन्दू संस्कार, पृ. 225)

बाद के ग्रन्थों में सगोत्र विवाह का प्रबल रूप से निषेध प्राप्त होता है।

विवाह की आयु के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि वैदिककाल में वर-वधू इतने प्रौढ़ होते थे कि स्वयं परस्पर चुनाव कर सकते थे। अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार वर का अपना एक स्वतन्त्र घर होना चाहिये, जिसमें उसकी पत्नी साम्राज्ञी हो -

**साम्राज्येधि स्वशुरेषु साम्राज्युत देवृषु।**

**ननान्दु साम्राज्येधि साम्राज्ञ श्वश्रवाः॥, अथर्ववेद, 18/1/44**

अल्पवय में विवाह होने से यह निर्णय क्षमता सम्भव नहीं थी, अतः विवाह एक परिपक्व आयु पर होता था। ऋग्वेद-काल में किसी भी कन्या का विवाह स्त्रीत्व या यौवन की प्राप्ति के पूर्व नहीं होता था। उसके विवाह के विषय में विचार करने के पूर्व पिता के घर में उसका पूर्ण शारीरिक विकास (पितृपदं व्यक्ता) होना आवश्यक था। सूर्य की पुत्री सूर्या का विवाह सोम के साथ उसी समय किया गया था जब कि वह युवती हो चुकी और पति प्राप्त करने के लिये उत्सुक थी। वेद की स्त्रीऋषि घोषा ने अपना विवाह उस समय किया जब कि उसका यौवन प्रायः बीत चुका था।' (हिन्दू संस्कार, पृ. 234-235)

गृह्यसूत्रों में वर्णित वैवाहिक कर्मकाण्डों से ज्ञात होता है कि कन्या का विवाह उसके रजोदर्शन के बाद किया जाता था।

वर कैसा होना चाहिये इस पर भी गृह्यसूत्रों में बहुत विचार हुआ है। वाराह गृह्यसूत्र के अनुसार विनीत, क्रोधरहित तथा सहर्ष पुरुष को हर्षित कन्या के साथ विवाह करना चाहिये-

**विनीतक्रोधः सहर्षः सहर्षा भार्या विन्देता वाराह-गृह्यसूत्र, 10/1; 10/6, हिन्दू संस्कार, पृ. 251**

गौतम व आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार विद्या, चारित्र्य, बान्धव तथा शीलसम्पन्न पुरुष के साथ कन्या का विवाह करना चाहिये-

**विद्याचारित्र्यबन्धुशीलसम्पन्नाय कन्यां दद्यात्, गौतमधर्मसूत्र**

**बन्धुशीललक्षणसम्पन्नः श्रुतवानरोग इति, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/3/20**

### 2.4.5 विवाह का विधि-विधान

वैवाहिक विधिविधानों में ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में वर्णित सोम-सूर्या के विवाह के मन्त्रों की प्रधानता है। वर्तमान विधानों की रूपरेखा ऋग्वेद व अथर्ववेद के वैवाहिक-सूक्तों पर आधारित है। वैदिक काल में ही वैवाहिक विधि-विधान पूर्ण विकसित अवस्था तक आ चुके थे। विभिन्न गृह्यसूत्रों में वैदिक काल के वैवाहिक विधि-विधान वर्णित हैं-

पारस्कर गृह्यसूत्र	बौधायन गृह्यसूत्र
1. अर्घ्य तथा मधुपर्क	वर-प्रेक्षण
2. वस्त्र परिधान	ब्रह्म-भोजन
3. समञ्जन	नान्दीमुख, विवाह-होम
4. वधू के साथ निष्क्रमण	वर का वधू के घर पर जाना
5. समीक्षण	समीक्षण

6.	अग्नि-प्रदक्षिणा	हस्तग्रहण(पाणिग्रहण)
7.	वैवाहिक होम, आज्याहुति, राष्ट्रभृत	सप्तपदी
8.	लाजाहोम	अर्घ्य तथा मधुपर्क
9.	पाणिग्रहण	अलंकरण
10.	अश्मारोहण	अदिति, अनुमति, सरस्वती, सविता तथा प्रजापति होम
11.	गाथा-गान	हृदय-स्पर्श
12.	अग्नि-परिक्रमण	कर्णेजप
13.	शेष लाजा-होम	पाणि-ग्रहण
14.	सप्तपदी	अग्नि-प्रदक्षिणा
15.	मूर्धाभिषेक	अश्मारोहण
16.	सूर्य-दर्शन	पुनः अग्नि प्रदक्षिणा
17.	हृदयस्पर्श	प्राजापत्य तथा अन्य आहुतियाँ
18.	अभिमन्त्रण	उद्वाह तथा विदाई
19.	वृष-चर्म पर बैठना	गृहप्रवेश
20.	ग्रामवचन	वृष-चर्म पर बैठना
21.	आचार्य को दक्षिणा	ध्रुव, अरुन्धती तथा सप्तर्षि दर्शन
22.	ध्रुवदर्शन	त्रिरात्र व्रत
23.	त्रिरात्र व्रत	चतुर्थी कर्म
24.	आवसथ्य होम	उपसंवेशन
25.	उद्वाहन	
26.	चतुर्थी कर्म	
27.	मूर्धाभिषिञ्चन	
28.	स्थाली-पाक-प्रेक्षण	
29.	पातिव्रत्य का प्रथ उपदेश	
30.	गर्भाधान	

(हिन्दू संस्कार, पृ. 262-263)

ऊपर्युक्त वैदिक वैवाहिक विधिविधानों में आज भी मधुपर्क, लाजाहोम, अश्मारोहण, गाथा-गान, मूर्धाभिषेक, हृदयस्पर्श, सूर्यदर्शन तथा सप्तपदी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

## 2.5 गर्भाधान संस्कार

गर्भाधान-संस्कार का सम्बन्ध जीव के सूत्रपात से है। जिस कर्म के द्वारा गर्भ धारण किया जाता है उसे गर्भाधान संस्कार कहते हैं-

इस संस्कार से यह ज्ञात होता है कि हिन्दूजीवनपद्धति में जीव का जन्म कोई साधारण घटना नहीं अपितु विशिष्ट कार्य है। जिसके निमित्त भी संस्कार आवश्यक है। ताकि जन्म लेने वाला शिशु दोषरहित, बुद्धिमान् व प्रखर हो सके। कालान्तर में विभिन्न कारणों से गर्भाधान संस्कार समाज में अल्पप्रचलित हो गया। परन्तु आज भी अनेक लोग उस तिथि, नक्षत्र, वार आदि का ध्यान रखते हैं, जो गृह्यसूत्रों व अन्य ग्रन्थों में गर्भाधान के लिये उपयुक्त व निषिद्ध बताये गये हैं तथा तदनुसार व्यवहार भी करते हैं। इस रूप में हम भारतीय ज्ञान परम्परा का सातत्य देख सकते हैं।

### 2.5.1 गर्भाधान संस्कार का परिचय

यद्यपि गृह्यसूत्रों में वर्णन से पूर्व ही गर्भाधान का विधि-विधान विभिन्न ग्रन्थों व समाज में प्रचलित रहा होगा तथापि पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में कुछ निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता। गृह्यसूत्रों में ही गर्भाधान सम्बन्धी विधानों का सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप में दर्शन होता है। गर्भाधान की प्रक्रिया में विभिन्न देवताओं की स्तुति की जाती थी।

धर्मसूत्र व स्मृतियों में भी इस संस्कार का वर्णन है परन्तु वहाँ कुछ कर्मकाण्डीय पक्षों को और जोड़ा गया है।

### 2.5.2 विभिन्न कालों में गर्भाधान संस्कार का स्वरूप

हिन्दू जीवन में सन्तानोत्पत्ति कोई सामान्यतः घटित घटना नहीं अपितु यह सुनियोजित व सुव्यवस्थित कर्म था। वेदों से लेकर, धर्मसूत्रों तथा स्मृति व पुराणों तक पग-पग पर यही भावना पुष्ट रूप में मिलती है। वैदिक काल से लेकर स्मृति-पुराण व महाकाव्यों तक गर्भाधान एक प्रमुख व अनिवार्य संस्कार के रूप में था। यह सृष्टि का आधार है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये विवाह के पश्चात् गर्भाधान के विशेष विधि-विधान बनाये गये तथा समाज में उनका प्रवर्तन हुआ। वैदिक काल व गृह्यसूत्रों में पति को गर्भाधान संस्कार का सर्वोत्तम कर्ता माना गया है परन्तु उसी अनुपस्थिति में अथवा उसकी मृत्यु के स्थिति में प्रतिनिधित्व का भी विधान है। जिसे नियोग-प्रथा कहा गया परन्तु कालान्तर में स्मृतियाँ इसका निषेध करती हैं। गर्भाधान वस्तुतः गर्भ का संस्कार था जिसे कुछ विद्वानों ने इसे क्षेत्र-संस्कार अर्थात् स्त्री का संस्कार भी माना है। गृह्यसूत्रकाल से अनिवार्य माना जाने वाला यह संस्कार समय के साथ अपनी प्रासङ्गिकता खोता गया और अब इसका मात्र नाम ही शेष रह गया। हालांकि आज भी गर्भाधान हेतु प्रशस्त व निषिद्ध तिथियों की चर्चा समाज में यत्र-तत्र होती रहती है।

### 2.5.3 गर्भाधान संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

वैदिक काल में सन्तति की प्रार्थना आदि के रूप में गर्भाधान संस्कार की अभिव्यक्ति मुखर हुयी है। गर्भाधान का स्वरूप गृह्यसूत्रों की रचना तक पर्याप्त विकसित हो चुका था। वेदों में अनेक प्रार्थनाएँ गर्भाधान का संकेत करती हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि 'विष्णु गर्भाशय का निर्माण करें; त्वष्टा तुम्हारा रूप सुशोभित करें; प्रजापति बीज वपन करें; धाता भ्रूण स्थापन करें। हे सरस्वति! भ्रूण को स्थापित करो, नीलकमल की माला से सुशोभित दोनों अश्विन तुम्हारे भ्रूण को प्रतिष्ठित करें', (अथर्ववेद 6/9/1/2) गृह्यसूत्रों में गर्भाधान का व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है। गृह्यसूत्रों के अनुसार 'विवाह के उपरान्त ऋतस्नान से शुद्ध

पत्नी के समीप पति को प्रतिमास जाना होता था। किन्तु गर्भाधान के पूर्व उसे विभिन्न प्रकार के पुत्रों-ब्राह्मण, श्रोत्रिय (जिसने एक शाखा का अध्ययन किया हो), अनूचान (जिसने केवल वेदाङ्गों का अनुशीलन किया हो), ऋषिकल्प (कल्पों के अध्येता), भ्रूण (जिसने सूत्रों और प्रवचनों का अध्ययन किया हो), ऋषि (चारों वेदों का अध्येता) और देव (जो ऊपर्युक्त से श्रेष्ठ हो)- की इच्छा के लिये व्रत का अनुष्ठान करना होता था।', (बौधायन गृह्यसूत्र, 1/7/1-8, हिन्दू संस्कार, 61) यह एक प्रकार से एक यज्ञ जैसा होता था। इसमें विभिन्न देवताओं तथा पूषा का आह्वान किया जाता था। जिसके उपरान्त पति-पत्नी के संयोग द्वारा गर्भधारण व सन्तानोत्पत्ति होती थी।

धर्मसूत्रों, स्मृतियों तथा परवर्ती साहित्य में गर्भाधान संस्कार को और भी अधिक अनुशासित व नियमित किया गया। जिसके अन्तर्गत गर्भाधान का समय, स्वीकृत व अस्वीकृत रात्रियाँ, नक्षत्र आदि पर विचार किया गया। गर्भधारण हेतु यह सर्वशास्त्रसम्मत है कि जब पत्नी गर्भधारण हेतु शारीरिक रूप से समर्थ हो अर्थात् ऋतुकाल में हो तब पत्नी के ऋतुस्नान के चौथी रात्रि से सोलहवीं रात्रि तक का समय गर्भधारण हेतु उपयुक्त है। विभिन्न गृह्यसूत्रों व स्मृतियों में चतुर्थ रात्रि को गर्भधारण हेतु शुद्ध माना गया है परन्तु गोभिल-गृह्यसूत्र का मत है कि गर्भधारण तभी होना चाहिये जब अशुद्ध रक्त का प्रवाह बन्द हो जाय। दिन में गर्भाधान का निषेध है। चौथी से सोलहवीं रात्रियों के अन्तर्गत बाद की रात्रियों को अधिक प्रशस्त माना गया है क्योंकि उनमें धारण हुयी सन्तति अधिक भाग्यवान् व गुणसम्पन्न समझी जाती है। गर्भाधान की रात्रि संख्या के अनुसार गर्भ का लिंग सुनिश्चित माना जाता था जिसमें पुरुष सन्तति के लिये सम तथा स्त्री सन्तति के लिये विषम रात्रि का विधान था। मास की आठवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं, तीसवीं तथा समस्त पर्व की तिथियाँ गर्भधारण के लिये निषिद्ध थीं।

गर्भाधान संस्कार पति के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता। इस सन्दर्भ में प्रो. राजबली पाण्डेय लिखते हैं कि -'प्रायः पति ही स्वभावतः संस्कारकर्ता था। किन्तु उसकी अनुपस्थिति में प्रतिनिधित्व भी विहित था। प्राचीन काल में नियोग-प्रथा प्रचलित थी, क्योंकि परिवार व मृत पूर्वजों के लौकिक तथा पारमार्थिक लाभ के लिये किसी भी प्रकार सन्तति का होना आवश्यक था।', (हिन्दू संस्कार, पृ. 67) प्रतिनिधित्व का अनेक स्मृतियाँ विधान करती हैं परन्तु गर्भाधान संस्कार का सर्वोत्तम कर्ता पति को ही सभी ने माना है। कालान्तर में परिवार-व्यवस्था, सन्तति के प्रति दृष्टिकोण तथा पवित्रता सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन आने के कारण प्रतिनिधित्व की व्यवस्था उपेक्षित व निषिद्ध हो गयी। मनु कौटिल्य आदि ने नियोग प्रथा का निषेध किया है।

गर्भाधान संस्कार के विषय में एक यह भी प्रश्न उठता है कि यह गर्भ-संस्कार है अथवा क्षेत्र-संस्कार। इसमें दो मत हैं। मनु और याज्ञवल्क्य आदि इसे गर्भ अथवा भ्रूण का संस्कार मानते हैं। दूसरा मत गर्भाधान को क्षेत्र-संस्कार अर्थात् स्त्री की शुद्धि मानता है। मूलतः गर्भाधान गर्भसंस्कार ही था।

ऋतुकाल में पत्नी के साथ संयोग प्रत्येक विवाहित व्यक्ति का पवित्र व अनिवार्य कर्तव्य माना जा था तथा गर्भाधान एक अनिवार्य संस्कार था।

## 2.5.4 गर्भाधान संस्कार का महत्त्व

गर्भाधान संस्कार सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक व वैज्ञानिक महत्त्व है। सन्तानोत्पत्ति मानव का एक साधारण कर्म होते हुये भी विशिष्ट है। गर्भ में सृष्टि एक विशिष्ट घटना है जिसके लिये सद्संकल्प आवश्यक है। उसी सद्संकल्प का प्रवर्तन यह संस्कार है। यह संस्कार इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय परम्परा में जीवन के उत्सव से लेकर जीवन के अन्त तक सर्वत्र उत्सव है, उल्लास की कामना है तथा उत्तरोत्तर प्रगति व उन्नति का दर्शन है। इसीलिये सन्तान की उत्पत्ति हेतु शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आर्थिक स्तर पर तैयार होकर गर्भ का आधान करना समस्त दृष्टियों से अच्छा है, आदर्श है। ऐसा करने से आने वाली सन्तान के पोषण उसके सम्यक् लालन-पालन, समाज में उसके स्थान व उसके जीवन के दिशा-निर्धारण में बहुत सहायता मिलती है।

## 2.6 पुंसवन संस्कार

गर्भाधान संस्कार के पश्चात् होने वाला द्वितीय संस्कार जो गर्भ की पुष्टि होने पर उसके पोषण हेतु और प्रायः पुत्र सन्तान की प्राप्ति हेतु होता था उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं।

### 2.6.1 पुंसवन संस्कार का परिचय

गर्भाधान संस्कार के पश्चात् जब यह निश्चय हो जाये कि गर्भधारण हो चुका है, पुंसवन संस्कार किया जाता है। पुंसवन का शाब्दिक अर्थ है वह संस्कार जिससे पुं अर्थात् पुमान् (पुरुष) सन्तति का जन्म हो-

**पुमान् लब्धो जायते येन तत् पुंसवनम्** आश्वलाय गृह्यसूत्र, 1/13/1

पुंसवन संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले विभिन्न मन्त्रों में पुमान् अथवा पुत्र का उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद का यह मन्त्र द्रष्टव्य है-

**पुंमासं पुत्रं जनय तं पुमाननुजायताम्।**

**भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च याना॥**, अथर्ववेद, 3/23/3/3

इसप्रकार पुंसवन संस्कार से सम्बन्धित अनेक ऋचाएँ पुत्र-जन्म का अनुमोदन करती हैं तथा पुत्र को जन्म देने वाली माता की प्रशंसा करती हैं।

### 2.6.2 विभिन्न कालों में पुंसवन संस्कार का स्वरूप

अथर्ववेद व सामवेद में पुत्र सन्तति की प्राप्ति हेतु प्रार्थनाएँ प्राप्त होती हैं। अथर्ववेद में एक प्रार्थना है जिसमें पति पत्नी से कहता है कि जिसप्रकार धनुष पर बाण का सन्धान किया जाता है, उसी प्रकार तेरे गर्भाशय में पुत्र को जन्म देने वाले गर्भ का आधान हो। दस माह व्यतीत होने पर तेरे गर्भ से वीर पुत्र का जन्म हो। तू पुरुष को, पुत्र को जन्म दे, उसके पश्चात् पुनः पुंसन्तति का प्रसव हो। तू पुत्रों की माता बन, उन पुत्रों की जो उत्पन्न हो चुके हैं तथा जिनका तू भविष्य में प्रसव करेगी-

**आ ते योनि गर्भ एतु पुमान् वाण इवेपुधिम्।**

**आवीरोऽत्र जायताम् पुत्रस्ते दशमास्या॥**, अथर्ववेद, 3.23



वैदिक काल में इस संस्कार की विधि क्या थी इसका बहुत विवरण नहीं मिलता परन्तु इसके संकेत अवश्य मिलते हैं कि इसमें गर्भवती महिला को कुछ ओषधियाँ भी दी जाती थीं।

गृह्यसूत्रों के अनुसार पुंसवन संस्कार गर्भाधारण के तीसरे अथवा चौथे मास तथा उसके पश्चात् सम्पन्न किया जाता था जब चन्द्र किसी पुरुष नक्षत्र में संक्रमण करता था।

परवर्ती धर्मसूत्रों व स्मृतियों में पुंसवन संस्कार में कोई नवीन विधान न करके पहले से चले आ रहे विधानों का ही पालन किया गया। स्मृतियों ने दो नवीन कार्यों मातृपूजा व आभ्युदयिक श्राद्ध को पहले से चली आ रही पुंसवन संस्कार की विधि में जोड़ा।

### 2.6.3 पुंसवन संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

गृह्यसूत्रों में पुंसवन संस्कार गर्भाधारण व उसकी पुष्टि पर तीसरे अथवा चौथे या उसके बाद जब कभी भी चन्द्रमा किसी पुरुष राशि में हो तब करने का विधान है। स्मृतियों में मनु तथा याज्ञवल्क्य ने गर्भाशय में गर्भ के गतिशील होने से पहले इस संस्कार का किया जाना उचित माना है। सामान्यतः इस संस्कार का समय द्वितीय से अष्टम मास तक माना जाता है। अधिकांश विद्वान् गर्भाधारण के तीसरे माह में इसे करना अधिक उत्तम मानते हैं।

शौनक के अनुसार पुंसवन संस्कार प्रत्येक गर्भाधारण के पश्चात् करना चाहिये। क्योंकि स्पर्श करने तथा ओषध के सेवन से गर्भ पवित्र व शुद्ध हो जाता है। इस के अतिरिक्त इस संस्कार के अवसर पर उच्चारित तथा पठित मन्त्रों के प्रभाव से व्यक्ति में विगत जन्मों को स्मरण करने की क्षमता का संचार होता है, (हिन्दू संस्कार, पृ. 76)

पुंसवन संस्कार उस समय करने का विधान है जब चन्द्रमा किसी पुरुष नक्षत्र में हो क्योंकि ऐसा करने से पुत्र सन्तति की प्राप्ति की सम्भावना प्रबल होती है। गर्भवती स्त्री के दाहिने नासिका-रन्ध्र में वटवृक्ष की छाल के रस को गर्भपात रोकने व पुत्र सन्तान के जन्म के लिये डाला जाता था। पारस्कर गृह्यसूत्र में ऐसा वर्णन है कि 'गर्भवती स्त्री को उस दिन उपवास करना होता था तथा स्नान के पश्चात् नवीन वस्त्र धारणकर रात्रि में वटवृक्ष की छाल को कूटकर तथा उसका रस निकालकर उस गर्भवती स्त्री की नासिका के दाहिने रन्ध्र में 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि शब्दों से आरम्भ होने वाली ऋचाओं के साथ डाला जाता था, (हिन्दू संस्कार पृ. 75) कुछ गृह्यसूत्रों के अनुसार इस अवसर पर कुशकण्टक व सोमलता भी कूटी जाती थी।

### 2.6.4 पुंसवन संस्कार का महत्त्व

गर्भ की रक्षा व स्वस्थ सन्तान के जन्म की दृष्टि से पुंसवन संस्कार बहुत महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि वैदिक काल से लेकर स्मृतियों तक इस संस्कार हेतु विहित विधि-विधानों का विद्वान् यह अर्थ करते हैं कि यह पुत्र सन्तान की प्राप्ति हेतु किया जाता था। जो कि आंशिक सत्य भी हो सकता है क्योंकि संघर्षकाल व युद्धकाल में पुरुषों की आवश्यकता स्वाभाविक थी। परन्तु यदि हम इसके पुत्र सन्तान की कामना के पक्ष को छोड़ भी दें और वैज्ञानिक पक्ष पर स्वास्थ्य व आयुर्वेद की दृष्टि से विचार करें तो पायेंगे कि यह संस्कार तृतीय से अष्टम माह तक करने का विधान है जो कि गर्भरक्षा की दृष्टि से बहुत संवेदनशील समय होता है। तथा अधिकांश गर्भपात तथा गर्भ में आने वाले विकार इसी समय उत्पन्न होते हैं। अतः ऐसे समय में माता व गर्भ का पुष्ट होना तथा प्रसन्न होना बहुत आवश्यक है। पुंसवन के समय दाहिने नासिकारन्ध्र में डाली जाने वाली

औषधियों- वट की छाल के रस, सहदेवी व विश्वदेवी आदि का आयुर्वेद में अत्यधिक महात्म्य है। सुश्रुत के अनुसार वटवृक्ष में ऐसे गुण होते हैं जिससे गर्भकालीन समस्त कष्ट जैसे तिल्ली का बढ़ना, दाह आदि दूर हो जाते हैं। वट न्यग्रोधवर्ग का पौधा है जिसे पोषक कहा गया है। निश्चय ही वट तथा अन्य औषधियों के प्रयोग से गर्भ पुष्ट होता था।

## 2.7 सीमन्तोन्नयन संस्कार

गर्भाधान व पुंसवन के सीमन्तोन्नयन संस्कार का विधान है। इस संस्कार के अन्तर्गत गर्भवती महिला के सीमन्त अर्थात् केशों का उन्नयन किया जाता है-

**सीमन्तो यस्मिन् कर्मणि उन्नीयते तत्सीमन्तोन्नयनम्। आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1/14/1**

कहने का तात्पर्य है कि सीमन्तोन्नयन संस्कार में पति द्वारा अपनी गर्भवती पत्नी के केशों को संवारकर उन्हें ऊपर की ओर उठाया जाता है।

### 2.7.1 सीमन्तोन्नयन संस्कार का परिचय

प्राचीन काल में ऐसी मान्यता थी कि अमंगलकारी शक्तियाँ गर्भ को नष्ट कर सकती हैं अतः अमंगलकारी शक्तियों के शमन एवम् गर्भवती स्त्री के मनःप्रसादन हेतु सीमन्तोन्नयन संस्कार किया जाता था। गर्भ के पाँचवे मास में शिशु में मानसिक शक्तियों का विकास होता है। सीमन्तोन्नयन संस्कार का मनोवैज्ञानिक लक्ष्य जन्म लेने वाले शिशु के शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी सुनिश्चित करना था।

### 2.7.2 विभिन्न कालों में सीमन्तोन्नयन संस्कार का स्वरूप

सामवेद के मन्त्र-ब्राह्मण में उल्लेख है कि -'जिस प्रकार प्रजापति ऐश्वर्य के लिये (सौभगाय) अदिति की सीमा निर्धारित करता है, उसी प्रकार मैं सन्तति के दीर्घायुष्य के लिये इसके केशों को विभक्त करता या संवारता (सीमानं नयमि) हूँ-

ओम्। येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।

तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदृष्टिं कृणोमि॥, सामवेद-मन्त्रब्राह्मण, 1/5/2 (हिन्दू संस्कार, पृ. 79)

गृह्यसूत्रों में सीमन्तोन्नयन संस्कार का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

### 2.7.3 सीमन्तोन्नयन संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

गृह्यसूत्र सीमन्तोन्नयन संस्कार हेतु चतुर्थ व पञ्चम मास का विधान करते हैं-

**प्रथमगर्भामाश्चतुर्थे मासि सीमन्तोन्नयनम्।, बौधायन गृह्यसूत्र, 1/10/1,**

**चतुर्थे गर्भमसि सीमन्तोन्नयम्। आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1/14/1, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 14/1**

स्मृति-साहित्य के अनुसार यह संस्कार छठे व आठवें माह तक हो सकता है। अनेक विद्वान् यह भी मानते हैं कि यदि किसी कारणवश सीमन्तोन्नयन नहीं हो सका और जन्म हो गया तो जन्म के बाद भी सीमन्तोन्नयन किया जा सकता है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार प्रत्येक गर्भधारण में करना चाहिये अथवा प्रथम गर्भधारण में। इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। आश्वलायन, आपस्तम्ब, बौधायन पारस्कर व गोभिल गृह्यसूत्र

सीमन्तोन्नयन को एक क्षेत्र-संस्कार मानते हैं अतः उनका कहना है कि इसे बस एक बार प्रथम गर्भधारण में करना चाहिये-

**प्रथमगर्भे चतुर्थे मासि षष्ठेऽष्टमे वा।, गोभिलगृह्यसूत्र, 2/7/2**

उनका यह मानना है कि सीमन्तोन्नयन द्वारा स्त्री के एक बार संस्कार कर दिये जाने पर उससे उत्पन्न प्रत्येक सन्तति का स्वतः संस्कार हो जाता है। अनेक आचार्य इसे गर्भ का संस्कार मानते हैं और उनका मानना है कि प्रत्येक गर्भावस्था में इसे करना ही चाहिये।

इस संस्कार को भी पुंसवन संस्कार की भाँति किसी पुरुष नक्षत्र में करने का विधान है।-

**आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/14/2**

इसमें भी संस्कार के दिन गर्भवती स्त्री को उपवास करना होता है। यह संस्कार मातृपूजा, नान्दिश्राद्ध तथा प्राजापत्य आहुति आदि के साथ आरम्भ होता था। 'पत्नी अग्नि के पश्चिम में एक कोमल आसन पर आसीन हो जाती थी और पति उदुम्बुर के समसंख्यक कच्चे फलों के गुच्छों, दर्भ अथवा कुश के तीन गुच्छों, तीन श्वेत चिह्नवाले साही के काँटों, वीरव्रत काष्ठ की यष्टि तथा पूर्ण तकुवे के साथ ; भूर्भुवः स्वः' आदि मन्त्र अथवा महाव्याहृतियों में से प्रत्येक का उच्चारण करता हुआ पत्नी के सीमन्तों को ऊपर की ओर (यथा शिर के अग्रभाग से आरम्भ कर) सँवारता था।, पारस्कर गृह्यसूत्र, 1/15/4, (हिन्दू संस्कार, पृ. 81)

इसके अन्तर्गत भूत-प्रेतों को भयभीत करने के उद्देश्य से पत्नी के ऊपर एक लाल चिह्न बनाने की प्रथा भी प्रचलित थी। सीमन्तों अर्थात् केशों को संवारने के बाद पति वटे हुये सूत्रों के धागों के साथ उदुम्बुर की शाखा पत्नी के गले के चारों ओर बाँध देता था तथा एक मन्त्र पढ़ता था जिसका अर्थ है-'यह वृक्ष ऊर्जस्वी है, तू भी इसी वृक्ष के समान ऊर्जस्वती तथा फलवती हो'-

**अयमूर्जस्वितो वृक्ष ऊर्जोव फलिनी भवा।, पारस्कर गृह्यसूत्र, 1/15/6**

बौधायन ने उदुम्बुर वृक्ष की शाखा के स्थान पर जौ के पौधे का विधान किया है। उदुम्बुर वृक्ष की शाखा गले में बाँधने के पश्चात् पति पत्नी से चावल की राशि अथवा तिल तथा घी की ओर देखने तथा सन्तति, पशु, सौभाग्य और अपने (पति के) दीर्घायुष्य की कामना हेतु कहता है-

**किं पश्यसि। प्रजा पशून् सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्च पत्या।, सामवेद मन्त्रब्राह्मण, 1/4/1-5, गोभिल गृह्यसूत्र, 2/7/10, 12 (हिन्दू संस्कार, पृ. 82)**

ब्राह्मण के भोजन के साथ सीमन्तोन्नयन संस्कार सम्पन्न होता था। संस्कार सम्पन्न होने पर रात्रि में आकाश में तारों के उदय तक गर्भवती स्त्री मौन रखती थी तथा गौ के बछड़े का स्पर्श करके 'भूर्भुवः स्वः' के उच्चारण के साथ मौनव्रत समाप्त करती थी।

## 2.7.4 सीमन्तोन्नयन संस्कार का महत्त्व

सीमन्तोन्नयन संस्कार गर्भवती स्त्री तथा उसके गर्भ की रक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस संस्कार द्वारा गर्भवती स्त्री का आत्मबल तथा मनोबल बढ़ा है तथा उसका शरीरिक व मानसिक स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है। सम्यक् व सुखपूर्वक प्रसव तथा माता व शिशु के स्वास्थ्य हेतु माता का प्रसन्न रहना तथा परिवार व समाज में उसकी प्रतिष्ठा आवश्यक है। सीमन्तोन्नयन संस्कार

से गर्भवती महिला की पारिवारिक व सामाजिक स्थिति व सन्तानोत्पत्ति द्वारा उसके समाज के प्रति महनीय योगदान को महत्त्व दिया जाता है। जिससे गर्भवती स्त्री मन से प्रसन्न रहती है। यह मानसिक प्रसन्नता गर्भकाल के अनेक बाधाओं का स्वतः शमन कर देती है। निश्चय ही सीमन्तोन्नयन संस्कार बहुत ही मनोवैज्ञानिक बुद्धि का परिणाम रहा होगा।

## 2.8 जातकर्म संस्कार

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन ये तीनों संस्कार प्राग्-जन्म-संस्कार हैं, जिन्हें शिशु के जन्म के पूर्व किया जाता है। शिशु के जन्म पर होने वाला प्रथम संस्कार जातकर्म संस्कार है। प्रसव एक बहुत महत्त्वपूर्ण व जटिल प्रक्रिया है। जिसमें प्रसव के समय तथा प्रसव के बाद माता व शिशु की सुरक्षा का बहुत ध्यान दिया जाता है। इस संस्कार के अन्तर्गत मुख्यरूप से मेधाजनन, आयुष्य तथा बल प्राप्ति हेतु प्रार्थना व अनुष्ठान किये जाते थे।

### 2.8.1 जातकर्म संस्कार का परिचय

अथर्ववेद में सुरक्षित प्रसव हेतु एक पूरा सूक्त (अथर्ववेद 1/11) दिया गया है जिसमें माता द्वारा सुरक्षित व सुखद प्रसव हेतु प्रार्थना की गयी है। गृह्यसूत्रों में भी सुरक्षित प्रसव के प्रसङ्ग में अथर्ववेद के इसी सूक्त के मन्त्रों का विनियोग है। वहाँ जातकर्म संस्कार का विशद वर्णन प्राप्त होता है।

शिशु के जन्म के पूर्व से ही सुरक्षित प्रसव हेतु तैयारियाँ होने लगती थीं। सूतिका-भवन का शुभतिथि, नक्षत्र, वार देखकर निर्माण किया जाता था। सूतिका-भवन को नैऋत्य दिशा व समतल भूमि पर बनाया जाना चाहिये। उसका द्वार पूर्व अथवा उत्तर की ओर होना चाहिये। शिशु के प्रसव के बाद माता व शिशु को धूम से पवित्र करने के लिये सूतिका-भवन में अग्नि प्रदीप्त किये जाने का विधान शांखायन, पारस्कर, बौधायन गृह्यसूत्रों में प्राप्त होता है। इस अग्नि को सूतिकाग्नि कहते हैं तथा जन्म के दसवें दिन शुद्धि के समय सूतिकाग्नि शान्त कर दी जाती है।

### 1.8.2 विभिन्न कालों में जातकर्म संस्कार का स्वरूप

अथर्ववेद के सुरक्षित प्रसव सम्बन्धी मन्त्रों में जातकर्म संस्कार की आरम्भिक अवस्था देखी जा सकती है। गृह्यसूत्रों में जातकर्म संस्कार का विधिवत् विधान प्राप्त होता है। उनके अनुसार जातकर्म संस्कार नाभिबन्धन से पूर्व सम्पन्न होता था। पुत्र का मुख देखकर सवस्त्र स्नानकर पिता वयोवृद्धों को आमन्त्रित करता था तथा नान्दी श्राद्ध और जातकर्म संस्कार सम्पन्न करता था।

### 2.8.3 जातकर्म संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

गृह्यसूत्रों के अनुसार जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत सर्वप्रथम 'मेधाजनन' किया जाता था। जिसमें पिता अपनी चौथी अङ्गुली और एक सोने की शलाका से शिशु को मधु और घृत अथवा केवल घृत चटाता था। इस क्रिया के साथ मन्त्रोच्चार भी किया जाता था। मेधाजनन से शिशु का बौद्धिक विकास सुनिश्चित होता था।—

जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत द्वितीय कृत्य आयुष्य है। जिसके अन्तर्गत शिशु की नाभि अथवा दाहिने कान के समीप पिता गुनगुनाता हुआ कहता है कि 'अग्नि दीर्घजीवी है; वह वृक्षों में

दीर्घजीवी है। मैं उस दीर्घायु से तुझे दीर्घायु करता हूँ। सीम दीर्घजीवी है; वह वनस्पतियों द्वारा दीर्घजीवी है, आदि। ब्रह्मा दीर्घजीवी हैं, वह अमृतत्व के द्वारा दीर्घजीवी हैं, आदि। यज्ञ दीर्घजीवी है, वह यज्ञिय अग्नि के द्वारा दीर्घजीवी है, आदि, समुद्र दीर्घजीवी है; वह नदियों द्वारा दीर्घजीवी है, आदि।'पारस्कर गृह्यसूत्र, 1.1.6.6 (हिन्दू संस्कार, पृ. 85)

ऐसा ही वचन आश्वालायन-गृह्यसूत्र में भी प्राप्त होता है-

**कर्णयोरुपनिधाय मेधाजननं जपति।**

**मेधान्ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती।**

**मेधान्ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ॥, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/15/2**

आयुष्य कर्म द्वारा शिशु के दीर्घायुष्य की कामना की जाती थी। इसमें शिशु के दीर्घायु हेतु भी मन्त्रोच्चार किया जाता था। पिता पाँच ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर उन्हें पाँच दिशाओं में आसीन कर उनसे शिशु पर श्वास-प्रश्वास छोड़ने की प्रार्थना करता था। श्वास जीवन का आधार है। इसीलिये यह कृत्य शिशु के जीवन को सबल करने व आयुष्य बढ़ाने के लिये किया जाता था। पारस्कर धर्मसूत्र (1/16/13) के अनुसार पिता द्वारा उस भूमि का भी सत्कार किया जाता था तथा उस भूमि के प्रति कृतज्ञताज्ञापन कर धन्यवाद दिया जाता था। वह पृथ्वी से प्रार्थना करता था कि हम सौ शरद्ऋतु देखें, हम सौ शरद् ऋतु पर्यन्त सुनें।

मेधाजनन व आयुष्य के पश्चात् शिशु के बलवर्द्धन हेतु 'बल' नामक क्रिया सम्पन्न होती है जिसमें पिता शिशु से कहता है कि, 'तू पत्थर हो, तू परशु हो, तू अमृत स्वर्ण बना। तू यथार्थ में पुत्र नाम से आत्मा है, तू सौ शरद्-ऋतु पर्यन्त जीवित रह' -

**अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यममृतः भव।, पारस्कर गृह्यसूत्र, 1/16/14**

ऊपर्युक्त तीनों क्रियाओं के पश्चात् पिता द्वारा सन्तान को जन्म देने वाली माता की स्तुति की जाती थी। अपनी पत्नी के सम्मान में पति कहता था कि-'तू इडा है; तू मित्रावरुण की पुत्री है; तुझ वीर-माता ने वीरपुत्र को जन्म दिया। जिसने हम लोगों को वीरपुत्र प्रदान किया, वह तू वीरवती हो-

**इडाऽसि मैत्रावरुणी वीरे वीरजीजनयः।**

**सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्भवतोऽकरदिति॥, पारस्कर गृह्यसूत्र, 1/19/15**

ऊपर्युक्त क्रियाओं के बाद शिशु की नाल उससे पृथक् की जाती थी तथा शिशु को स्नान व माता का स्तनपान करवाया जाता था। इससमय पिता एक जलपूर्ण पात्र माता के सिर के पास रखकर कहता था कि -'हे जल, तुम देवताओं के साथ निरीक्षण करते हो। जिसप्रकार तुम देवों के साथ देखभाल करते हो, उसीप्रकार सूतिका-गृह में स्थित माता और उसके शिशु की देखभाल करो।'

सूतिकागृह के द्वार पर अग्नि प्रज्वलित होती रहती थी तथा उसमें प्रतिदिन सायं सरसों के बीज आदि की आहुति देकर शिशुओं को होने वाले रोगों और विकारों को दूर रहने की प्रार्थना की जाती थी। जातकर्म संस्कार ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा के साथ सम्पन्न होता था।

## 2.8.4 जातकर्म संस्कार का महत्त्व

केवल गर्भाधान तथा गर्भ की रक्षा ही नहीं महत्त्वपूर्ण है अपितु सुखद प्रसव के साथ ही साथ माता तथा शिशु का स्वस्थ रहना भी बहुत आवश्यक है। इसीलिये जातकर्म संस्कार का विधान है जिसमें गर्भवती महिला के आवास से लेकर उसकी सुरक्षा व उसके स्वास्थ्य को तो सुनिश्चित किया ही जाता है तथा साथ ही शिशु के स्वास्थ्य, उसके दीर्घायुष्य, मेधा तथा बल हेतु भी विभिन्न क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं तथा प्रसूतिकाल के सूतक और उसके शुद्धि तक उसकी सर्वविधि रक्षा की जाती है। आज के वैज्ञानिक युग में जातकर्म के अन्तर्गत होने वाली अनेक क्रियाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण हो गयी हैं। सम्यक् जातकर्म से माता व शिशु दोनों का स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है तथा मातृ-शिशु मृत्युदर में कमी आती है। जातकर्म संस्कार में न केवल रक्षा हेतु देवताओं की स्तुति की जाती है अपितु उस भूमि तथा उस माता के प्रति कृतज्ञताज्ञापन का भी विधान है जो सुरक्षित प्रसव का आधार व सन्तति की जननी है। यह विधान अत्यन्त उदात्त व अद्वितीय है।

## 2.9 सारांश

इसप्रकार संस्कार हिन्दू जीवन के महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं। समस्त संस्कारों एवम् गृहस्थाश्रम सहित ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ व सन्न्यास का आधार विवाह संस्कार ही है। इसीलिये भारतीय समाज में आरम्भ से ही विवाह को प्रधान मान्यता प्राप्त है। विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है, जिस हेतु गर्भाधान संस्कार का विधान है क्योंकि सन्तान की उत्पत्ति कोई साधारण और उद्देश्यहीन कर्म नहीं है अपितु उसका भी उद्देश्य है, अतः उसे सत्संकल्प के साथ होना चाहिये। इसीलिये गर्भाधान संस्कार का विधान है। गर्भाधान के साथ हृष्टपुष्ट सन्तान की प्राप्ति तथा उसके शारीरिक व मानसिक विकास को सुनिश्चित करने के लिये पुंसवन व सीमन्तोन्नयन संस्कार का विधान है। तत्पश्चात् सुरक्षित प्रसव व माता व शिशु के स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य तथा बल व बुद्धि के विकास हेतु जातकर्म संस्कार का विधान है।

इसप्रकार हिन्दू जीवन अपने उत्स से लेकर अन्त तक प्रधानतः सोलह संस्कारों में बद्ध है जो उसके जीवन को दिशा प्रदान करते हैं। प्रत्येक संस्कार का मानव के उत्थान में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है तथा प्रत्येक के विधि-विधान समय व प्रकृति की प्रयोगशाला में दीर्घकाल तक परीक्षित हैं।

## 2.10 शब्दावली

- 1) गोमिथुन- गायों का जोड़ा
- 2) ऋत्विज्- पुरोहित
- 3) लाजाहोम- विवाह संस्कार के अन्तर्गत की जाने वाली एक वैदिक विधि जिसमें धान के खील (लावा=लाजा) अग्नि में अर्पित किया जाता है।
- 4) दीर्घायुष्य- लम्बी आयु
- 5) ऋतुस्नान- रजोदर्शन के चतुर्थ दिन रजस्वला द्वारा किया जाने वाला स्नान।
- 6) ऋतुकाल- रजोदर्शन के चौथे दिन से लेकर सोलहवें दिन तक की अवधि।
- 7) सूतिका-गृह- प्रसव हेतु बनाया जाने वाला घर, जिसमें प्रसूता व शिशु के निवास तथा

सुरक्षा की व्यवस्था हो।

विवाह, गर्भाधान, पुंसवन,  
सीमन्तोन्नयन, जातकर्म

8) मनःप्रसादन- मन की प्रसन्नता

9) सुश्रुत - प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य, शल्यचिकित्सा के जनक एवम् सुश्रुतसंहिता के प्रणेता।

---

## 2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

---

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षापद्धति, सुविचार प्रकाशन मंडल लिमिटेड, नागपूर, 1935
2. आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, सं. पण्डितकुलपति, श्री जीवानन्द विद्यासागर, सरस्वतीयन्त्रे, 1883ई.
3. आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, टी. गणपति शास्त्री, हरिदत्ताचार्य मिश्र, महामहिमश्रीमूलकरामवर्मकुलशेखरमहाराजशासनेन राजकीयमुद्रणयन्त्रालये तदध्यक्षेण मुद्रयित्वा प्रकाशितम्, 1923
4. ऋग्वेदसंहिता, वैदिक संशोधन मंडल, पूना, 1941
5. गोभिलगृह्यसूत्रम्, टीका.पं सत्यव्रत सामशास्त्री, मथुरापुरस्थ शास्त्रप्रकाश कार्यालये, 1906ई.
6. तैत्तिरीयब्राह्मणम्, सायणभाष्यसहितम्, आर. शाम. शास्त्री, गवर्नमेण्ट ब्रांच प्रेस, मैसूर 1921
7. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार- सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957
8. पाण्डेय, विजयशंकर, वैदिकसूक्तसंकलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
9. पारस्करगृह्यसूत्रम्, सुधाकर मालवीय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
10. मनुस्मृति, सं. पं. हरिगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस।
11. शतपथ-ब्राह्मण, शांकर भाष्य, अनुवादक- माधवानन्द, अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी, संवत्-1994-97
12. शास्त्री, हरिदत्त, ऋक्सूक्तसङ्ग्रह, रतिराम शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
13. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी, 1985
14. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, यजुर्वेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
15. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, सामवेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
16. वाक्यपदीयम्, प्रथमो भागः, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2016
17. वैदिक सूक्त सङ्ग्रह, गीताप्रेस, गोरखपुर।
18. The Bodhayana Grhyasutra, Ed. R Shama Sastri, Meharchand Lachhmandas, New Delhi, 1982, reprint from 1920

---

## 2.12 बोध प्रश्न

---

### दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय जीवन में संस्कारों का महत्त्व बताते हुये विवाह संस्कार पर प्रकाश डालिये।
2. गर्भाधान संस्कार पर एक निबन्ध लिखिये।
3. पुंसवन संस्कार से आप क्या समझते हैं? समझाइये।
4. सीमान्तोन्नयन संस्कार का भारतीय जीवन में क्या महत्त्व है?
5. जातकर्म संस्कार का वर्णन करते हुये इसके महत्त्व को समझाइये।

### लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विवाह के कितने प्रकार हैं?
2. आर्ष विवाह क्या है?
3. 'सीमान्तोन्नयन' शब्द से क्या आशय है?
4. पुंसवन संस्कार का समय क्या है?
5. आसुर विवाह क्या है?



---

## इकाई 3 नामकरण, निष्क्रमण, चूडाकरण, उपनयन

---

### इकाई की रूपरेखा

- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 प्रस्तावना
- 3.3 संस्कार- सामान्य परिचय
  - 3.3.1 संस्कार शब्द का अर्थ
  - 3.3.2 संस्कारों का प्रयोजन
  - 3.3.3 संस्कारों के प्रकार
  - 3.3.4 संस्कारों की संख्या
- 3.4 नामकरण संस्कार
  - 3.4.1 नामकरण संस्कार का उद्भव एवम् विकास
  - 3.4.2 नामों की रचना उनके प्रकार एवम् आधार
    - 3.4.2.1 नामों की रचना
    - 3.4.2.2 नामों के प्रकार एवम् आधार
  - 3.4.3 नामकरण संस्कार का विधि-विधान
  - 3.4.4 नामकरण संस्कार का प्रयोजन एवम् महत्त्व
- 3.5 निष्क्रमण संस्कार
  - 3.5.1 निष्क्रमण संस्कार का उद्भव एवम् विकास
  - 3.5.2 निष्क्रमण संस्कार का समय एवम् विधि-विधान
  - 3.5.3 निष्क्रमण संस्कार का प्रयोजन एवम् महत्त्व
- 3.6 चूडाकरण संस्कार
  - 3.6.1 चूडाकरण संस्कार का उद्भव एवम् विकास
  - 3.6.2 चूडाकरण संस्कार का समय एवम् विधि-विधान
  - 3.6.3 चूडाकरण संस्कार का प्रयोजन एवम् महत्त्व
- 3.7 उपनयन संस्कार
  - 3.7.1 उपनयन संस्कार का उद्भव
  - 3.7.2 विभिन्न कालों में उपनयन संस्कार का स्वरूप
  - 3.7.3 उपनयन संस्कार का समय एवम् विधि-विधान
  - 3.7.4 उपनयन संस्कार का प्रयोजन एवम् महत्त्व
- 3.9 सारांश
- 3.10 शब्दावली
- 3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

### 3.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों को संस्कारों की आरम्भिक अवस्था से अवगत करवाना है।
- इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी नामकरण, निष्क्रमण, चूड़ाकरण व उपनयन संस्कार के विधान से परिचित हो सकेंगे।
- इसके माध्यम से विद्यार्थी भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कारों के शास्त्रीय व लौकिक पक्ष में परस्पर सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थियों को भारतीय समाज में नामकरण, निष्क्रमण, चूड़ाकरण व उपनयन संस्कार के महत्त्व एवम् उनके विधि-विधानों के वैज्ञानिक पक्ष का भी ज्ञान होगा।
- इस इकाई के अध्ययन से किसप्रकार भारतीय परम्परा प्रतिपल जीव के संस्कार पर ध्यान देती है, यह भी विद्यार्थी जान सकेंगे।

### 3.1 प्रस्तावना

भारतीय जीवन में संस्कार की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिये संस्कार आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये भारतीय जीवनपद्धति में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सोलह संस्कारों को स्थान दिया गया है। जन्म के उपरान्त संस्कार की व्यवस्था तो भारतीय जीवन में है ही परन्तु यहाँ जन्म से पूर्व भी संस्कारों का विधान है जिसमें गर्भाधान, पुंसवन व सीमन्तोन्नयन परिगणित है। संस्कार व्यक्तित्वविकास की आधारशिला है।

विभिन्न संस्कारों के विधि-विधान दीर्घकालीन वैज्ञानिक चिन्तन का परिणाम हैं। संस्कार की विभिन्न विधियाँ न केवल वृक्षों व वनस्पतियों से अपितु इस समग्र ब्रह्माण्ड से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं। हिन्दू संस्कार इस बात को पुष्ट करते हैं कि यह पिण्ड ब्रह्माण्ड से भिन्न नहीं है। संस्कारों के माध्यम से हिन्दू चेतना का विकास हुआ है और भारतीय मनीषा के उन्नति में संस्कार सहायक रहे हैं। प्रकृति की प्रयोगशाला में सुदीर्घकाल से चले आ रहे विभिन्न प्रयोगों एवम् उनके सद्परिणाम के रूप में संस्कारों को देखा जा सकता है। विभिन्न संस्कार नामकरण, निष्क्रमण, चूड़ाकरण व उपनयन एक जीवन के उत्तरोत्तर विकास एवम् समाज में उसके महत्त्वपूर्ण अस्तित्व के द्योतक हैं।

### 3.2 संस्कार- सामान्य परिचय

संस्कार मानवजीवन की आधारशिला हैं। संस्कारों के माध्यम से एक सुसंस्कृत मानव का वपन होता है जिसका जीवन समाज व संस्कृति को सुफल प्रदान करने वाला होता है। आश्रमव्यवस्था, संस्कार व पञ्चमहायज्ञ भारतीय जीवन की आचारसंहिता के प्रमुख अध्याय हैं। जीवन को जिसप्रकार चार आश्रमों में वर्गीकृत किया गया है ठीक उसी प्रकार जीवन को आद्यन्त सोलह संस्कारों द्वारा सुनियोजित किया गया है।

भारतीय परम्परा में जीव का जन्म एक असाधारण घटना है और यह घटना भी पूर्वनियोजित व संकल्पबद्ध हो अतः इसके लिये गर्भाधान संस्कार का विधान है। भारतीय जीवन में उच्छृंखल व अस्थायी सम्बन्धों को स्वीकार नहीं किया गया है अतः व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक जीवन के विकास व सम्बन्धों के स्थायित्व हेतु विवाह संस्कार का प्रावधान है। विवाह का प्रधान प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति द्वारा सृष्टिप्रक्रिया को आगे बढ़ाना है अतः सन्तानोत्पत्ति के कार्य-सम्पादन का संकल्प लेकर किया जाने वाला संस्कार गर्भाधान है। गर्भ में सन्तान पुष्ट हो, सुरक्षित रहे इसलिये पुंसवन का विधान है। जन्म देना एक बहुत बड़ा कार्य है अतः माता का मन प्रसन्न रहे तथा शिशु का मानसिक विकास सुनिश्चित हो सके इसके लिये सीमन्तोन्नयन संस्कार का प्रावधान है। जन्म अर्थात् प्रसव न केवल शिशु का जन्म है अपितु यह माता का भी पुनर्जन्म है अतः ऐसे समय शिशु व माता दोनों के स्वास्थ्य रक्षा व अन्य अन्यान्य बाधाओं से सुरक्षा हेतु जातकर्म संस्कार का विधान है। शिशु किस नाम से इस समाज में जाना जाय तथा वह नाम भी शुभ हो अतः नामकरण संस्कार की व्यवस्था है। नामकरण के पश्चात् शिशु जब जन्म के बाद प्रथम बार घर से बाहर आता है और उसे सूर्य का दर्शन करवाया जाता है तो निष्क्रमण संस्कार सम्पन्न होता है। जातक की दीर्घायु व उसके कल्याण के लिये चूडाकरण संस्कार किया जाता है। तत्पश्चात् शिशु के सौन्दर्य व स्वास्थ्य हेतु कर्णवेध संस्कार का विधान है। जातक की शिक्षा हेतु विद्यारम्भ संस्कार, उपनयन व वेदारम्भ संस्कार है। पुनः केशान्त संस्कार तथा विद्याध्ययन पूर्ण करने पर समावर्तन संस्कार का विधान है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु विवाह संस्कार है तथा इस शरीर की समाप्ति के बाद अन्त्येष्टि संस्कार का विधान है।

### 3.2.1 संस्कार शब्द का अर्थ

संस्कार शब्द की निष्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृञ्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय (सम्+कृञ्+घञ्) से होती है। इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- संस्क्रियते अनेन, अर्थात् जिससे कोई वस्तु संस्कृत, परिष्कृत अथवा शुद्ध की जा सके वह 'संस्कार' कहलाता है। इस शब्द का अर्थक्षेत्र बहुत विस्तृत है। भारतीय परम्परा के अनुसार संस्कार द्वारा व्यक्ति का दूसरा जन्म होता है। संस्कार से ही व्यक्ति 'द्विज' कहलाता है- **जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।** लोक से लेकर शास्त्रों तक 'संस्कार' शब्द के विविध अर्थ प्राप्त होते हैं। संस्कार का षोडश संस्कार के सन्दर्भ में अर्थ है विधि-विधानपूर्वक व्यक्ति का परिष्कार।

### 3.2.2 संस्कारों का प्रयोजन

भारतीय जीवनव्यवस्था में संस्कारों का प्रयोजन बहुत व्यापक है जो व्यक्ति से लेकर इस सृष्टि तक को प्रभावित करता है। संस्कारों से दोष दूर होते हैं और व्यक्तित्व का परिमार्जन होता है। संस्कारों के विधि-विधान व्यक्ति के अस्तित्व को अर्थपूर्ण बनाते हैं। संस्कार व्यक्ति में विवेकबुद्धि के स्फुरण व जागरण की आरम्भिक प्रक्रिया है। यह जीवन का ऐसा संयमन व नियमन है जिससे विचलन की संभावना न्यून हो जाती है। भारतीय जीवन के ओज, तेज, दीप्ति व आभा का आधार संस्कार है। संस्कारों का प्रधानप्रयोजन जीवन से अशुभ व अवांछित प्रभावों का निवारण कर, दोषों को दूर कर, गुणों का विकास व संवर्धन करना है।

### 3.2.3 संस्कारों के प्रकार

संस्कारों की संख्या के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है फिर भी व्यापक स्तर पर संस्कारों की संख्या सोलह मानी गयी है। इस सोलह संस्कारों का वर्गीकरण भी विभिन्न रूपों में किया

गया है जो कि अधोलिखित है-

1. प्राग्-जन्म संस्कार- प्राग्जन्म संस्कार ऐसे संस्कार हैं जो शिशु के जन्म से पूर्व सम्पन्न होते हैं। गर्भाधान, पुंसवन व सीमन्तोन्नयन प्राग्-जन्म संस्कार हैं।
2. बाल्यावस्था अथवा शैशव के संस्कार- ये वो संस्कार हैं जो शिशु के बाल्यकाल में सम्पन्न होते हैं। जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण व कर्णवेध बाल्यावस्था में सम्पन्न किये जाने संस्कार हैं।
3. शैक्षणिक संस्कार- शिक्षा से जुड़े हुये संस्कार शैक्षणिक संस्कार हैं। विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त तथा समावर्तन शैक्षणिक संस्कार हैं।
4. विवाह संस्कार
5. अन्त्येष्टि संस्कार

### 3.3.4 संस्कारों की संख्या

यदि शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो 'संस्कार' गृह्यसूत्रों का विषय है। गृह्यसूत्रों ने संस्कारों का विस्तृत वर्णन 'गृह्य-यज्ञ' के रूप में किया है। गृह्यसूत्रों में वर्णित संस्कारों की संख्या बारह से लेकर अठारह तक है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में ग्यारह संस्कार हैं- विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूडाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन, अन्त्येष्टि। पारस्कर गृह्यसूत्र में तेरह संस्कार हैं- विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, केशान्त, समावर्तन व अन्त्येष्टि। वाराह गृह्यसूत्र में भी संस्कारों की संख्या तेरह है- जातकर्म, नामकरण, दन्तोद्गमन, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, वेद-व्रतानि, गोदान, समावर्तन, विवाह, गर्भाधान, पुंसवन व सीमन्तोन्नयन। बौधायन गृह्यसूत्र में भी संस्कारों की संख्या तेरह है- विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध (गृह्यशेष), उपनयन, समावर्तन व पितृमेधा। वैखानस गृह्यसूत्र में संस्कारों की संख्या अठारह है- ऋतुसङ्गमन, गर्भाधान, सीमन्त, विष्णुबलि, जातकर्म, उत्थान, नामकरण, अन्नप्राशन, प्रवसागमन, पिण्डवर्धन, चौलक, उपनयन, पारायण, व्रतबन्धविसर्ग, उपाकर्म, उत्सर्जन, समावर्तन व पाणिग्रहण। गृह्यसूत्रों के अतिरिक्त धर्मसूत्रों, स्मृतिग्रन्थों व पुराणों में भी संस्कारविषयक विस्तृत सामग्री मिलती है।

वर्तमान में संस्कारों की संख्या सामान्यतः सोलह मानी गयी है। आज भी समाज जिनको किसी न किसी रूप में सम्पन्न करता है। ये संस्कार हैं- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह एवम् अन्त्येष्टि। इन सोलह संस्कारों में से प्रत्येक का बीज वेदों तथा गृह्यसूत्रों में विद्यमान है।

### 3.4 नामकरण संस्कार

संसार के समस्त क्रियाकलापों को ठीक से सम्पन्न होने के लिये प्रत्येक व्यक्ति व वस्तु का कोई न कोई नाम होना आवश्यक है। माना जाता है कि व्यक्ति जिस नाम से जाना जाता है तदनुसार स्वभाव ग्रहण कर लेता है अथवा स्वभाव तथा गुण-दोष के आधार पर व्यक्तियों व वस्तुओं का नामकरण किया जाता है। भारत में वैदिक काल से लेकर आजतक प्रत्येक तत्त्व के नामकरण

की एक समृद्ध परम्परा रही है जिसमें से कि प्रायः गुणों के आधार पर नामकरण किया जाता रहा है। नाम व्यक्ति की विशिष्ट पहचान है जिससे व्यक्ति दूसरों से अलग जाना जाता है। अतः नाम रखते समय सावधानी तो अपेक्षित है। वर्ण और अक्षर की शक्ति में विश्वास करने वाली संस्कृति, जिसका भाषाचिन्तन संस्कृति के उषाकाल से ही समृद्ध रहा है, भला नामकरण पर विचार क्यों न करती? अतः जातक के जन्म के बाद नामकरण संस्कार करने का विधान है ताकि जातक का उत्तम नाम रखा जाय, जो उसके व्यक्तित्व को प्रकाशसम्पन्न बनाये।

### 3.4.1 नामकरण संस्कार का उद्भव एवम् विकास

भारतीय भाषाचिन्तन संस्कृति के आरम्भिक काल से ही बहुत समृद्ध रहा है। यहाँ ध्वनि से लेकर पद, वाक्य तथा पदार्थ, वाक्यार्थ तक पर विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है। जैसा कि विदित है कि भारतीय परम्परा में प्रत्येक जन्म का कुछ न कुछ प्रयोजन है तथा जन्म से पूर्व ही गर्भाधान के समय ही सम्पूर्ण जीवन संकल्प से बद्ध रहता है ऐसे में जातक का नाम रखने के लिये कोई न कोई प्रावधान तो होना ही था। इसीलिये जातक के जन्म के बाद उसके नामकरण का विधान किया गया जिसके अन्तर्गत शुभ तिथि, वार, नक्षत्र देखकर जातक के जन्म के समय और उसके लक्षणों के अनुसार नाम रखा जाने लगा। भारतीय परम्परा में नाम को बहुत विचारपूर्वक रखने का विधान है।

मानव-समाज में व्यवहार हेतु नाम का होना बहुत आवश्यक है। वीरमित्रोदय में कहा गया है कि नाम समस्त प्रकार के व्यवहार का हेतु है। नाम शुभावह है अर्थात् शुभकारक है तथा कर्मों में भाग्य का हेतु अर्थात् कारण है। नाम से ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है अतः नामकरण का कार्य अत्यन्त प्रशस्त है, करने योग्य है-

**नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।**

**नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म॥** (हिन्दू संस्कार में उद्धृत, पृ. 100)

नामकरण का उद्भव कब हुआ यह भाषाशास्त्र की परिधि का विषय है परन्तु इतना अवश्य है कि भारत में ऋग्वैदिक काल से ही नामकरण की परम्परा है और वेदों में वर्णित समस्त व्यक्ति, प्राकृतिक व दैवीय तत्त्व व वस्तु किसी न किसी नाम से अभिहित हैं। नामकरण-संस्कार की परम्परा कब से प्रारम्भ हुयी यह विमर्श का विषय है। समाज में प्रायः देवताओं, सन्त-महात्माओं तथा समाज के कल्याणकारी तत्त्वों के नाम पर नाम रखने की प्रमुखता रही है। भारत में किसी समाज जैसे साधु समाज में प्रवेश अथवा सन्न्यास ग्रहण करने पर भी उस परम्परा के अनुसार पुनः नामकरण की परम्परा है। कुछ क्षेत्रों में विवाह के पश्चात् वधू का ससुराल में पुनः नामकरण प्रचलित है। यहाँ विषय जन्म के बाद जातक के नामकरण-संस्कार का है।

नामकरण शब्द के मूल में जो 'नामन्' शब्द है उसका आदिग्रन्थ ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है। वैदिक साहित्य में विभिन्न तत्त्वों, एक तत्त्व के विभिन्न स्वरूपों तथा व्यक्तियों के नाम दृष्टिगोचर होते हैं। ऋग्वेद में गुह्य नामों को भी मान्यता प्राप्त है। ऐतरेय तथा शतपथब्राह्मण में गुह्य नामों का भी उल्लेख है। नामकरण में प्रायः दो नाम होते हैं, एक प्रत्यक्ष नाम और एक गुह्य अथवा गुप्त नाम। यह दो नाम ग्रहण करने की परम्परा प्राचीनकाल से ही प्रचलित है। प्राचीनकाल में एकनाम प्रचलित नाम होता था तथा द्वितीय नाम माता अथवा पिता के आधार पर होता था जैसे बृहदारण्यकोपनिषद् में गार्गी वाचकनवी। इसमें गार्गी प्रचलित नाम है और

वाचकनी उनके पिता वचकनी के नाम से निष्पन्न है। इसीप्रकार द्वितीय नाम माता, पूर्वज तथा क्षेत्र आदि के आधार पर भी हो सकता था। शतपथ-ब्राह्मण में नवजात शिशु के नामकरण के सन्दर्भ में एक विधिवाक्य प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है कि पुत्र के उत्पन्न होने पर उसका नाम रखना चाहिये-

**तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्।, शतपथब्राह्मण, 6/1/3/9**

विभिन्न ब्राह्मणग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि सूत्रसाहित्य के आविर्भाव के पूर्व से ही भारत में नामकरण की परम्परा रही है। यद्यपि नामकरण के विधि-विधान क्या थे, इसका कोई विशेष उल्लेख नहीं प्राप्त होता परन्तु वैदिक नामों को देखकर ऐसा अवश्य लगता है कि नामकरण हेतु स्पष्ट नियम अवश्य रहे होंगे। गोभिल गृह्यसूत्र के अतिरिक्त अन्य गृह्यसूत्रों में नामकरण संस्कार के अवसर पर उपयोग में लायी जाने वाली ऋचाओं का उल्लेख नहीं मिलता। नाम के प्रकारों का उल्लेख लगभग समस्त गृह्यसूत्रों में है।

### 3.4.2 नामों की रचना, उनके प्रकार एवम् आधार

गृह्यसूत्रों ने प्रथमतः नाम के विधान पर विचार किया है कि नाम कितने अक्षर का होना चाहिये, किन अक्षरों से आरम्भ होना चाहिये? किन अक्षरों को नाम में नहीं होना चाहिये? बालकों का नाम कैसा व कितने अक्षर का होना चाहिये तथा बालिकाओं का नाम कैसा होना चाहिये आदि।

#### 1.1.1.1 नामों की रचना

पारस्कर गृह्यसूत्र (1/17/1) के अनुसार नाम दो अथवा चार अक्षर का होना चाहिये जिसमें अर्धस्वर होना चाहिये तथा नाम का अन्त दीर्घ स्वर अथवा विसर्ग से होना चाहिये। नाम में तद्धित का प्रयोग नहीं करना चाहिये कृत् का प्रयोग करना चाहिये। वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार नाम दो अक्षरों तथा चार अक्षरों का होना चाहिये तथा उसे लकारान्त व रेफान्त नहीं होना चाहिये-

**तद् द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा विवर्जयेदन्त्यलकाररेफम्।, वसिष्ठधर्मसूत्र, 4**

आश्वलायन गृह्यसूत्र में अक्षरों के साथ-साथ उससे जुड़े गुणों का भी वर्णन है कि प्रतिष्ठा चाहने वाले व्यक्ति को दो अक्षर तथा ब्रह्मवर्चस के इच्छुक व्यक्ति को चार अक्षर का नाम रखना चाहिये-

**द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः।आश्वालायन-गृह्यसूत्र, 1/15/7**

बालक का नाम सम अक्षरों की संख्या व बालिकाओं के नाम में अक्षरों विषम होनी चाहिये तथा नाम आकारान्त होना चाहिये व उसमें तद्धित का प्रयोग होना चाहिये-

**युग्मानि त्वेव पुंसाम्। अयुजानि स्त्रीणाम्।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/15/8-9**

**अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियं तद्धितम्।, पारस्कर-गृह्यसूत्र, 1/17/3**

#### 1.1.1.2 नामों के प्रकार एवम् आधार

गृह्यसूत्रों से नक्षत्रों के नाम व लौकिक नामों के विषय में ज्ञात होता है। स्मृतियों व ज्योतिष ग्रन्थों में नाम के प्रकारों एवम् नामकरण के आधार पर व्यापक चर्चा मिलती है। प्रो. राजबली

पाण्डेय की पुस्तक 'हिन्दू संस्कार' के अनुसार नामों के चार प्रकार हैं—

नामकरण, निष्क्रमण,  
चूडाकरण, उपनयन

1. **नक्षत्र नाम** – इसप्रकार का नामकरण उस नक्षत्र के आधार पर होता था जिसमें शिशु का जन्म होता था। इसके अन्तर्गत उस नक्षत्र के देवता के आधार पर नाम रखा जाता था जैसे मृगशिरा नक्षत्र में जन्म लेने पर सोम, अश्विनी में जन्म पर अश्विनीकुमार, रोहिणी में रोहिणीकुमार आदि। नक्षत्रों की संख्या 27 है और वर्णमाला में अक्षरों की संख्या 52 अतः प्रत्येक नक्षत्र के अन्तर्गत एक से अधिक अक्षर आते हैं। एक नक्षत्र के चार चरण होते हैं प्रत्येक चरण का कोई अक्षर होता है। अतः जातक का नाम जिस नक्षत्र के जिस चरण में उसका जन्म हुआ है उसके अक्षर के आधार पर होना चाहिये उदाहरणार्थ रोहिणी नक्षत्र के द्वितीय चरण में जन्म लेने वाले जातक का नाम 'व' अक्षर से प्रारम्भ होना चाहिये। 'व' अक्षर रोहिणी नक्षत्र के द्वितीय चरण हेतु निर्धारित है। इस नक्षत्र पर आधारित नाम को प्रायः 'राशि का नाम' कहते हैं। इस नाम को गुप्त रखा जाता था-

### नक्षत्रनामधेयेन द्वितीयं नामधेयं गृह्यम्, बौधायन-गृह्यसूत्र

2. **मास के देवता पर आधारित नाम-** जिस माह में जातक का जन्म हुआ हो, उस माह के देवता के आधार पर भी जातक का नामकरण करने का विधान है जैसे मार्गशीर्ष में कृष्ण, पौष में अनन्त, माघ में अच्युत आदि। यह जातक का द्वितीय नाम होता था। इसप्रकार के नामकरण की परम्परा सूत्रकाल के बाद की है।
3. **कुल-देवता पर आधारित नाम-** कुलदेवता के अनुसार भी नाम रखने की परम्परा है। इसमें मान्यता यह है कि जातक को कुलदेवताओं का संरक्षण प्राप्त होता है। इन्द्र, सोम, मित्र, प्रजापति, राम, शंकर आदि इस प्रकार के नाम हैं। नामकरण के समय ऐसे नामों के साथ 'दास' अथवा 'भक्त' शब्द जोड़ने का विधान है जैसे- रामदास, रामभक्त आदि।
4. **लौकिक नाम-** लौकिक नाम लोकव्यवहार हेतु होता है। यह व्यावहारिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस नामकरण में भी नामकरण के विधि-विधानों का ध्यान रखा जाता है। लौकिक नाम शुभ, अर्थपूर्ण, मंगलसूचक, लिंगानुसार, शिशु के लक्षणों के अनुरूप, यश, ऐश्वर्य व शक्ति का द्योतक होना चाहिये। स्त्रीनाम आकारान्त व ईकारान्त तथा अक्षरों की विषमसंख्या से युक्त होना चाहिये।

नामों के ऊपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त भूत-प्रेत, रोग तथा अग्निष्ट आदि की शान्ति व उससे बचाव हेतु प्रतीकारात्मक व भर्त्सनासूचक नामों को रखने का चलन भी रहा है उदाहरणार्थ शुनःशेष।

### 3.4.3 नामकरण संस्कार का विधि-विधान

गृह्यसूत्रों के अनुसार सामान्यतः शिशु का नामकरण संस्कार उसके जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन सम्पन्न करना चाहिये। कुछ आचार्यों के अनुसार गृह्यनाम को जन्म के दिन ही रखा जाना चाहिये। बाद के ग्रन्थों में नामकरण जन्म के दसवें दिन से लेकर द्वितीय वर्ष के प्रथम दिन तक कभी भी शुभ तिथि व नक्षत्र में करने का विधान है। गोभिल गृह्यसूत्र के परिशिष्ट में किसी आचार्य का मत दिया गया है कि नामकरण संस्कार जन्म के दसवें, बारहवें, सौंवे अथवा प्रथम वर्ष के समाप्ति पर करना चाहिये।

गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार नामकरण संस्कार हेतु प्रसवोपरान्त शुद्धि हो जाने पर घर को

धुलकर, शिशु व माता को स्नान करवाया जाता था। माता शिशु को स्वच्छ वस्त्र से ढँककर तथा उसके सिर को आर्द्र कर पिता को दे देती थी। इसके बाद प्रजापति, तिथि, नक्षत्र तथा उनके देवताओं को आहुतियाँ दी जाती थीं। पिता शिशु के श्वाश-प्रश्वासों पर ध्यान देता था जिसका उद्देश्य शिशु की चेतना का उद्बोधन कर उसका ध्यान संस्कार की ओर आकृष्ट करना होता था। इसके बाद नाम रखा जाता था। गृह्यसूत्रों में विधि का वर्णन नहीं प्राप्त होता है परन्तु पद्धतियों में विधि का वर्णन है। जिसके अनुसार शिशु के दाहिने कान में पिता शिशु को सम्बोधित करते हुये कहता था कि हे शिशु तू कुलदेवता का भक्त है तेरा अमुक नाम है, तू अमुक मास में जन्मा है अतः तेरा अमुक नाम है, तू अमुक नक्षत्र में जन्मा है अतः तेरा अमुक नाम है तथा तेरा लौकिक नाम अमुक है। संस्कार के अवसर पर उपस्थित ब्राह्मण कहते थे कि 'यह नाम प्रतिष्ठित हो'। अन्त में शिशु का अभिवादनीय नाम रखा जाता था तथा ब्राह्मण-भोजन व देवताओं तथा पितरों की विदाई के साथ संस्कार सम्पन्न होता था।

### 3.4.4 नामकरण संस्कार का प्रयोजन एवम् महत्त्व

नामकरण का प्रधान प्रयोजन लोकव्यवहार है। भारतीय परम्परा में माना जाता है कि नामकरण से व्यक्ति के जीवन की दिशा एवम् दशा जुड़ी हुयी है। व्यक्ति रहे न रहे परन्तु उसके द्वारा किये गये कार्यों के आधार पर उकास नाम जीवित रहता है। भारतीय जीवन में नाम का सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक व दार्शनिक महत्त्व है। नामकरण के अवसर पर यह भी विचार किया जाता है कि नाम न केवल व्यक्ति के लिये शुभ हो अपितु वह उच्चारणकर्ताओं हेतु भी शुभ हो।

## 3.5 निष्क्रमण संस्कार

निष्क्रमण का अर्थ है 'निकलना'। इस सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का मानना है कि प्रसव के बात प्रसूति-गृह से बाहर निकलने पर निष्क्रमण-संस्कार होना चाहिये और कुछ का मानना है कि शिशु जब घर से बाहर निकले तब यह संस्कार सम्पन्न होना चाहिये। निष्क्रमण संस्कार के माध्यम से शिशु का परिवार के बाहर के समाज से प्रथम सम्पर्क होता है और वह सूर्य की किरणों व घर के बाहर के वातावरण के सम्पर्क में आता है। अतः ऐसे में शिशु की कुशल-क्षेम व उसके कल्याण हेतु निष्क्रमण-संस्कार का होना आवश्यक था।

### 3.5.1 निष्क्रमण संस्कार का उद्भव एवम् विकास

घर के बाहर प्रथम बार निकलना शिशु के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना है। विधि-विधानपूर्वक शिशु को प्रथम बार घर से बाहर निकालना प्राचीनकाल से होता आया है। इस संस्कार के अवसर पर पिता शिशु को बाहर ले जाकर 'तच्चक्षुर्देवहितम्' (पारस्कर-गृह्यसूत्र, 1/17/5/6) कहते हुये सूर्य का दर्शन करवाता है। यह मन्त्र सामान्यतः सर्वत्र सूर्य की ओर देखते समय व्यवहार में लाया जाता है। स्मृतिकाल में निष्क्रमण संस्कार सम्बन्धित विधि-विधानों को अधिक विस्तार प्राप्त हुआ।

### 3.5.2 निष्क्रमण संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

निष्क्रमण संस्कार का समय जन्म के पश्चात् बारहवें दिन से लेकर चतुर्थ मास तक बताया गया है। ऐसा प्रसूति-ग्रह से निकलने तथा घर से बाहर निकलने की मान्यता के आधार पर है। गृह्यसूत्रों में जन्म के पश्चात् तीसरे या चौथे महीने निष्क्रमण संस्कार का विधान है।



आश्वलाय का मत है कि यदि किसी कारणवश निष्क्रमण संस्कार समय से न सम्पन्न हो सके तो उसे अन्नप्राशन के साथ करना चाहिये। ज्योतिषसम्मत तिथियों को यह संस्कार सम्पन्न करना चाहिये।

गृह्यसूत्रों के अनुसार इस संस्कार को माता-पिता को सम्पन्न करवाना चाहिये। बाद के ग्रन्थों में इस संस्कार को मामा द्वारा भी सम्पन्न करवाने की बात कही गयी है। गृह्यसूत्रों में संस्कार को एक गृह्ययज्ञ माना जाता था अतः निष्क्रमण संस्कार पिता ही सम्पन्न करवाते थे।

गृह्यसूत्रों के अनुसार निष्क्रमण संस्कार के विधि-विधान के अन्तर्गत संस्कार वाले दिन माता आँगन अथवा घर के बाहर एक वर्गाकार स्थान को गाय के गोबर अथवा मिट्टी से लीपकर उसपर स्वास्तिक का चिह्न बनाती थी तथा धान्य-कणों को उसपर विकीर्ण करती थी। यहीं पर पिता द्वारा शिशु को लाकर सूर्यदर्शन करवाया जाता था।

बाद के ग्रन्थों स्मृतियों, पुराणों आदि में निष्क्रमण संस्कार के विधि-विधानों को और अधिक विस्तार प्राप्त हुआ।

### 3.5.3 निष्क्रमण संस्कार का प्रयोजन एवम् महत्त्व

निष्क्रमण संस्कार का प्रयोजन पूर्ण सावधानी के साथ एक सकारात्मक वातावरण में शिशु को घर से बाहर लाकर परिवार व समाज के अन्य सदस्यों तथा बाहर के वातावरण से परिचित करवाना था। शिशुओं के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुये इस कार्य में कतिपय सावधानी आवश्यक थी तथा यह प्रथम बार बाहर के वातावरण से तथा प्रकृति से परिचय का समय होता था अतः हर्षोल्लास, उत्सव, प्रकृति के तत्त्वों व इष्ट देवों का इस कार्य में साक्षी होना मूल भारतीय भावना के अनुरूप ही था। इसके अन्तर्गत प्रकृति के प्रधान तत्त्व जिनसे समस्त सृष्टि प्रकाशित है ऐसे सूर्यदेव का प्रथम दर्शन पिता द्वारा करवाया जाता था जो इस बात का प्रतीक था कि शिशु के जीवन में सूर्य की सत्ता बनी रहे, प्रकाश बना रहे और वह जीवन में उत्तरोत्तर प्रगति करता रहे।

भारतीय जीवन में जीवन के प्रत्येक पड़ाव को बहुत महत्त्व दिया गया है। यहाँ जीवन संयोग मात्र नहीं है अपितु एक संतुलन व सामंजस्य का प्रतीक है।

## 3.6 चूडाकरण संस्कार

शिशु के सौंदर्यवर्धन, आयुष्य व कल्याण की कामना से चूडाकरण संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इसके अन्तर्गत शिशु का केशकर्तन किया जाता है। इस अवसर पर भी इष्टदेवों व प्रकृति के तत्त्वों को साक्षी माना जाता है। चूडाकरण शारीरिक शुचि से भी जुड़ा हुआ है जिसमें शिशु गर्भस्थ केश से मुक्त होता है और उसके सिर में किसी प्रकार का विकार होने, रोग आदि होने की संभावना नहीं रहती है। अनेक विद्वान् मानते हैं कि चूडाकरण मेधावर्धन में भी सहायक है। यह एक ऐसा संस्कार है जो आज भी लोक में प्रचलित है।

### 3.6.1 चूडाकरण संस्कार का उद्भव एवम् विकास

चूडाकरण वैदिक काल से चला आ रहा संस्कार है। यजुर्वेद में छुरे के प्रति एक प्रार्थना प्राप्त होती है जिसमें ऋषि छुरे से कहते हैं कि, 'नाम से तू शिव है। लोहा (स्वधिति) तेरा पिता है। मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। तू शिशु की हिंसा अथवा क्षति न करा'-

ओम् शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मा मा हिंसीः।, यजुर्वेद, 3/63 (हिन्दू संस्कार, पृ. 121)

गृह्यसूत्रों में चूडाकरण संस्कार को व्यवस्थित रूप प्राप्त हुआ। वहाँ इस संस्कार सम्बन्धित विधि-विधानों का व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है। स्मृतियों एवम् पुराणों में चूडाकरण के कर्मकाण्डीय पक्ष का अधिक विकास हुआ।

### 3.6.2 चूडाकरण संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

गृह्यसूत्रों में चूडाकरण जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त तक अथवा तृतीयवर्ष की समाप्ति के पहले करने का विधान है। कुछ गृह्यसूत्र तीसरे व पाँचवे वर्ष में चूडाकरण को श्रेष्ठ मानते हैं। गृह्यसूत्रों के अनुसार तीसरे व पञ्चम वर्ष में चौलकर्म करना चाहिये किन्तु इसे सप्तम वर्ष अथवा उपनयन के साथ भी किया जा सकता है।-

**तृतीये पञ्चमें वाऽब्दे चौलकर्म प्रशस्यते।**

**प्राग्वाऽसमे सप्तमे वा सहोपानयनेन वा॥**

आश्वालायन का मत है कि चूडाकरण तृतीयवर्ष अथवा कुलधर्मानुसार होना चाहिये-

**तृतीये वर्षे चौलं, यथाकुलधर्मं वा॥, आश्वालायन-गृह्यसूत्र, 1/17/1**

अत्रि का वचन है कि प्रथम वर्ष में चूडाकरण संस्कार करने से दीर्घायुष्य तथा ब्रह्मवर्चस प्राप्त होता है। तृतीय वर्ष में करने से समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है। पशुओं की इच्छा करने वाले व्यक्ति को पाँचवे वर्ष चूडाकरण करना चाहिये। परन्तु युग अथवा समवर्षों में चूडाकरण वर्जित है।-

**तृतीय वर्षे चौले तु सर्वकामार्थसाधनम्।**

**संवत्सरे तु चौलेन आयुष्यं ब्रह्मवर्चसम्॥**

**पञ्चमे पशुकामस्य युग्मे वर्षे तु गर्हितम्॥**

इस संस्कार को सूर्य के उत्तरायण होने पर सम्पन्न करवाने का विधान है। इस संस्कार को दिन में ही सम्पन्न करवाना चाहिये। राजमार्तण्ड ने चैत्र व पौष माह तथा सारसङ्ग्रह ने ज्येष्ठ व मार्गशीर्ष माह इसके लिये वर्जित बताया है। (हिन्दू संस्कार, पृ. 123) शिशु के माता के गर्भवती होने पर शिशु का चूडाकरण संस्कार करवाना निषिद्ध माना जाता है। यह नियम माता की गर्भावस्था के पञ्चम मास के पश्चात् लागू होता है। यदि जातक का संस्कार पाँच वर्ष की आयु के पश्चात् सम्पन्न हो रहा है तब यह नियम मान्य नहीं होता। यदि शिशु की माता रजस्वला हो तो उसकी शुद्धि तक भी संस्कार स्थगित करने का विधान है।

सूत्रकाल में समस्त गृह-यज्ञ घर में ही सम्पन्न होते थे अतः चूडाकरण के भी गृह्ययज्ञ होने के कारण घर में ही सम्पन्न करने का विधान है। बाद के समय में यज्ञ का प्रचलन कम होता गया तथा आहवनीय अग्नि प्रत्येक घर में प्रदीप्त नहीं रख जाने लगी अतः चूडाकरण संस्कार घर से बाहर प्रायः देवालयों आदि में होने लगा।

चूडाकरण संस्कार में छौरकर्म के बाद शिखा रखने का विधान है जो कि अपनी कुलपरम्परा के अनुसार रखी जाती है। आश्वालायन गृह्यसूत्र में कहा गया है कि 'यथाकुलधर्मं केशवेशान् कारयेत्'।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/17/17

शिखाओं की संख्या प्रवरों एक, तीन या पाँच प्रवर के आधार पर भी निश्चित की जाती थी।-

नामकरण, निष्क्रमण,  
चूडाकरण, उपनयन

**‘एकशिखः त्रिशिखः पञ्चशिखो वा’** इति बोधायनः।, *आश्वलायन-गृह्यसूत्र, 1/17/17* में उद्धृत

चूडाकरण संस्कार हेतु एक शुभ दिन निश्चित किया जाता था। तत्पश्चात् संकल्प, गणेश-आराधन, मङ्गलश्राद्ध आदि द्वारा संस्कार प्रारम्भ होता है। इस अवसर पर भोजन करवाने का भी विधान है। इस अवसर पर माता शिशु को स्नान करवाकर, ऐसे वस्त्र से ढँक देती थी जो कि धोया न गया हो तथा शिशु को अपनी गोद में लेकर यज्ञिय अग्नि के पश्चिम की ओर बैठ जाती थी। उसे पकड़ते हुये पिता आज्य आहुतियाँ देता था तथा यज्ञशेष भोजन कर चुकने पर निम्न शब्दों के साथ उष्ण जल को शीतल जल में छोड़ता था- ‘उष्ण जल के साथ यहाँ आओ वायु! अदिति! केशों का छेदन करो।’ इसके बाद पिता घी अथवा दही पानी में मिलाकर शिशु के दाहिने कान की ओर के केशों को भिगोते हुए कहता था कि सविता की प्रेरणा से दिव्य जल तेरी देह को शुद्ध करे, जिससे तू दीर्घायुष्य तथा तेज प्राप्त कर सके। इसके बाद शल्यक के श्वेतबिन्दुयुक्त तीन काँटों से केश को बिखेरकर उनमें कुश की तीन पत्तियों को – हे कुश, शिशु की रक्षा कर। उसे पीड़ा न पहुँचा’ कहकर पिता रखता था तथा छुरे से शिशु के प्रति हिंसा न करने की प्रार्थना के साथ अपने हाथ में लोहे का छुरा उठाकर ‘मैं आयुष्य, अन्नाद्य, प्रज्ञा, ऐश्वर्य, सुप्रजात्व तथा सुवीर्य हेतु केशों को काटता हूँ’ कहता हुआ केशों का छेदन करता था। केशों के साथ ही कुशपत्तियों का भी छेदन कर उन्हें अग्नि के उत्तर में रखे बैल के गोबर के पिण्ड पर छोड़ देता था। इसीप्रकार केशों की दो अन्य लटें मौनपूर्वक काट दी जाती थीं। फिर सिर के पीछे के केशों को ‘तिगुनी आयु’ के मन्त्र के साथ काटा जाता था। पुनः दीर्घायु आदि की कामना के साथ बायीं ओर के केशों का छेदन किया जाता था। -

**पञ्चात्कारयिष्यमाणस्यावस्याय शीतोष्णा अपः समानीयोष्णेन वा, य उदकेनोति तासां गृहीत्वा नवनीतं दधिद्रप्सान् वा प्रदक्षिणं शिरस्त्रिरुन्दति, अदितिः केशान्वयत्वाप उन्दन्तु वर्चस इति। दक्षिणे केशपक्षे त्रौणि त्रौणि कुशपिञ्जलान्यभ्यात्माग्राणि निदधाति, ओषधे चास्वैनमिति। स्वधिते मैनं हिंसीरिति लौहेन क्षुरेण॥, *आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1/17/7-9***

इसप्रकार चूडाकरण की प्रक्रिया में शिशु के सिर को आर्द्र करना, प्रार्थना और सिर के केशों का छेदन सम्मिलित है। दीर्घायुष्य हेतु चूडाकरण के अवसर पर शिखा भी रखने का विधान है।

### 3.6.3 चूडाकरण संस्कार का प्रयोजन एवम् महत्त्व

चूडाकरण का शास्त्रीय प्रयोजन दीर्घायु की प्राप्ति है। इसका लौकिक प्रयोजन गर्भ के केशों से मुक्ति है। सुश्रुत ने कहा है कि केश, नख तथा रोम के अपमार्जन अथवा छेदन से हर्ष, लाघव, सौभाग्य व उत्साह बढ़ता है तथा पाप का उपशमन होता है-

**पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।**

**हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्धनम्॥, चिकित्सास्थान, 24.72**

अतः इस संस्कार के मूल में स्वास्थ्य व सौन्दर्य की भावना निहित है।

### 3.7 उपनयन संस्कार

उपनयन संस्कार शिक्षा सम्बन्धी संस्कार है। गृह्यसूत्रों में इसपर सम्यक् प्रकाश डाला गया है। उपनयन का शाब्दिक अर्थ है शिक्षाप्राप्ति अथवा ज्ञानप्राप्ति हेतु जिज्ञासु का गुरु के समीप जाना। इस संस्कार के माध्यम से ब्रह्मचारी गुरु के पास शिक्षा प्राप्त करने गुरुकुल जाते थे।

उपनयन संस्कार किसी भी शास्त्र में प्रवेश हेतु अनिवार्य था। इसके माध्यम से व्यक्ति समाज में भी प्रतिष्ठित होता था। शिक्षा का हिन्दू जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और इस शिक्षा जगत् में प्रवेश का साधन उपनयन संस्कार था।

#### 3.7.1 उपनयन संस्कार का उद्भव

उपनयन संस्कार का उद्भव वैदिक काल के पूर्व ही हो चुका था। ऋग्वेद में विद्याध्ययन के अर्थ में दो बार ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग हुआ है। वहाँ पर ऐसे छात्र का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिसका उपनयन अभी-अभी हुआ हो। अथर्ववेद में भी उपनयन का उल्लेख मिलता है। वैदिक काल में छात्र को ब्रह्मचारी और शिक्षक को आचार्य कहा जाता था। उपनयन संस्कार द्वारा ब्रह्मचारी का द्वितीय जन्म माना जाता था और वह द्विज कहलाता था। अथर्ववेद में कहा गया है कि – 'आचार्य उपनयन करता हुआ ब्रह्मचारी को गर्भ में धारण करता है। वह तीन रात्रि पर्यन्त उसे उदर में रखता है। जब वह जन्म ( नवीन या द्वितीय जन्म) ग्रहण करता है, तो देवगण उसे देखने के लिये एकत्र होते हैं।'-

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।

तं रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥, अथर्ववेद, 11.5.3

#### 3.7.2 विभिन्न कालों में उपनयन संस्कार का स्वरूप

वैदिक संहिताकाल में उपनयन गुरु के समीप शास्त्राध्ययन हेतु जाना था। इसके लिये ब्रह्मचारी गुरुकुल जाता था तथा गुरु से दीक्षित होता था। ब्राह्मणकाल में उपनयन को कर्मकाण्डपरक स्वरूप प्राप्त हुआ तथा उसका विधिविधान निश्चित हो गया। उपनिषद् काल में ब्रह्मचर्य अथवा छात्र-जीवन एक संस्था के रूप में विकसित हो चुका था तथा आचार्य ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा हेतु बहुत महत्त्वपूर्ण हो गये थे। गृह्यसूत्रों तक आते-आते उपनयन पूर्ण-प्रतिष्ठित हो चुका था। समस्त गृह्यसूत्रों ने उपनयन को शाश्वत माना गया है तथा उसे अनिवार्य माना गया है।

अथर्ववेद में उपनयन शब्द का अर्थ 'ब्रह्मचारी को ग्रहण करने' के अर्थ में किया गया है- उपनयमानो ब्रह्मचारिणम्, अथर्ववेद, 11/5/3, यहाँ ब्रह्मचारी द्वारा वेद की दीक्षा ग्रहण किये जाने का प्रसङ्ग है। ब्राह्मणकाल में भी उपनयन शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में था। सूत्रकाल में भी विद्यार्थी द्वारा ब्रह्मचर्य हेतु प्रार्थना एवम् आचार्य द्वारा उसकी स्वीकृति ही उपनयन संस्कार का अर्थ था। कालान्तर में उपनयन के रहस्यात्मक महत्त्व में वृद्धि हुयी तथा उपनयन के केन्द्र में जो विद्याप्राप्ति की मूलभावना थी उसे गायत्री-मन्त्र द्वारा दीक्षा तथा 'द्विज' की धारणा ने तिरोहित कर दिया। वर्तमान में इस संस्कार का वैदिक व सूत्रकालीन अभिप्राय सर्वथा लुप्तप्राय हो गया है, उसके आधार पर बस सांकेतिक विधि-विधान रह गये हैं, जिसमें यज्ञोपवीत धारण करवाना ही प्रधान रह गया है। अपनी मौलिकता में यह संस्कार ज्ञानप्राप्ति का प्रवेशद्वार था।

### 3.7.3 उपनयन संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

उपनयन विद्या का संस्कार था। इसमें विद्याप्राप्ति हेतु ब्रह्मचारी गुरु के पास जाता था। 'उप' का अर्थ है 'समीप' 'नयन' का अर्थ है ' लाया जाना'।

कुछ विशिष्ट गुणों की प्राप्ति के लिये अलग-अलग वर्षों में उपनयन करने की मान्यता रही है। बौधायन गृह्यसूत्र (2/5/5)के अनुसार ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति हेतु सातवें, दीर्घायुष्य हेतु आठवें, ऐश्वर्य हेतु नौवें, भोजन हेतु दसवें, पशुओं हेतु बारहवें, शिल्प-कौशल हेतु तेरहवें, तेजस्विता हेतु चौदहवें, बन्ध-बान्धवों हेतु पन्द्रहवें और समस्त गुणों की प्राप्ति हेतु सोलहवें वर्ष उपनयन करना चाहिये। पारस्कर गृह्यसूत्र (2/5/36-38)के अनुसार उपनयन संस्कार की अन्तिम सीमा चौबीस वर्ष थी।

साधारणतः सूर्य के उत्तरायण काल में उपनयन संस्कार का विधान था। वैदिक साहित्य में उपनयन संस्कार के अन्तर्गत आचार्य के चुनाव पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। शौनक का कथन है कि कुलीन, विद्वान् व आत्मसंयमी आचार्य की कामना करनी चाहिये। श्रुतवान्, अभिजात, चरित्रवान् तथा तपःपूत व्यक्ति को बालक का उपनयन करना चाहिये।(हिन्दू संस्कार, पृ. 161-162) -

कुमारस्योपनयन श्रुताभिजनवृत्तवान्।

तपसा धूतनि शेषपाप्मा कुर्याद् द्विजोत्तमा॥ (शौनक)

आचार्य अर्थात् शिक्षक को सत्य बोलने वाला, धृतिमान्, दक्ष, प्राणिमात्र के प्रति दयालु, आस्तिक, वैदिक स्वाध्याय में रत, शुचि, वेदाध्ययन से सम्पन्न, चरित्रवान्, जितेन्द्रिय तथा उत्साही होना चाहिये। (हिन्दू संस्कार, पृ.162)

उपनयन संस्कार सम्पन्न होने के पूर्व एक मण्डप का निर्माण किया जाता था-

पञ्चसु बहिःशालाया विवाहे चूडाकरणोपनयने केशान्ते सीमन्तोन्नयन इति।, पारस्कर गृह्यसूत्र, 1/4/2

संस्कार के एक दिन पूर्व अनेक पौराणिक विधि-विधान किये जाते थे। गणपति-आराधन, लक्ष्मी, धात्री, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, सरस्वती आदि देवियों का पूजन आदि किया जाता था। इन देवियों के पूजन का विधान गृह्यसूत्रों में नहीं अपितु परवर्ती साहित्य में है। उपनयन के अवसर पर सहभोज होता था। बालक को भोज के पश्चात् माता-पिता आहवनीय अग्नि से प्रदीप्त मण्डप में ले जाते थे। इस अवसर पर ब्रह्मयज्ञ अनिवार्य था। उसके पश्चात् बालक का मुण्डन होता था तत्पश्चात् स्नान व उसके बाद बालक को कौपीन धारण करवाया जाता था। तब बालक आचार्य के निकट जाकर ब्रह्मचारी होने की इच्छा प्रकट करता था और कहता था कि – 'मैं यहाँ ब्रह्मचर्य के लिये आया हूँ। मैं ब्रह्मचारी बनूँगा'। (पारस्कर गृह्यसूत्र, 2/2/9)उसकी प्रार्थना स्वीकार कर आचार्य उसे वस्त्र देते हुये इस आशय का मन्त्र कहते थे कि 'जिसप्रकार बृहस्पति ने इन्द्र को अमृतत्व का बल दिया, उसप्रकार मैं दीर्घायुष्य, दीर्घजीवन, शक्ति तथा तेज और ऐश्वर्य के लिये यह वस्त्र तुझे देता हूँ'।(पारस्कर गृह्यसूत्र, 2/2/10)आपस्तम्ब तथा बौधायन गृह्यसूत्रों के अनुसार वस्त्रखण्ड ब्रह्मचारी के घर पर संस्कार से ठीक पूर्व कातकर बुना जाता था-  
वासः सद्य कृत्तौतम्।, बौधायन गृह्यसूत्र, 2/5/11, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 11/16

आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार ब्रह्मचारी के वस्त्रों के रंग क्रमशः काषाय, माञ्जिष्ठ तथा हारिद्र होने चाहिये।

वस्त्र देने के बाद आचार्य बालक के कटि के चारों ओर मन्त्र कहते हुये मेखला बाँधते थे। मेखला का निर्माण मूलतः कौपीन की सहायता हेतु हुआ था परन्तु कालान्तर में यह धार्मिक प्रतीक बन गयी। मेखला भिन्न-भिन्न पदार्थों से निर्मित होती थी - मूँज, प्रत्यंचा अथवा ऊन की। मेखला चिकनी, एक समान व देखने में सुन्दर होनी चाहिये।

मेखला धारण करने के बाद उपवीत ब्रह्मचारी को उपनयन सूत्र दिया जाता है। परवर्ती काल में उपनयन सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा। गृह्यसूत्रों में उपवीत सूत्र धारण करने का विधान नहीं है। उपवीत का सूत्र कुमारी द्वारा कातने तथा उसमें प्रवर के अनुसार ग्रन्थिबन्धन का विधान था। उपवीत के प्रत्येक तन्तु के तीन धागे सत्त्व, रजस् व तमस् के प्रतीक हैं। ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत धारण करवाते समय आचार्य उसके आयुष्य, बल व तेज हेतु प्रार्थना करते हैं कि-

**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।**

**आयुष्यमग्रं प्रत्मुखं श्म्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥, पारस्कर गृह्यसूत्र, 2/2/13**

इसके पश्चात् ब्रह्मचारी को अजिन् प्रदान किया जाता था। अजिन् का अर्थ मृग अथवा बकरे आदि पशु का चर्म है। इसके पश्चात् आचार्य द्वारा ब्रह्मचारी को दण्ड(काष्ठ का डण्डा)देने का विधान है, जिसे वह यह कहते हुये स्वीकार करता है कि यह मेरा दण्ड है, जो मुक्त वायुमण्डल से भूमि पर गिर गया था। मैं दीर्घायुष्य, वर्चस्व तथा शुचिता के लिये उसे पुनः ग्रहण करता हूँ यह दण्ड पलाश, गूलर, अथवा बिल्व का होना चाहिये।

कुछ गृह्यसूत्र सभी प्रकार के दण्ड धारण करने का विधान करते हैं परन्तु कुछ केवल यज्ञिय वृक्ष के काष्ठ का ही विधान करते हैं।

उपनयन में विवाह-संस्कार जैसे हृदय-स्पर्श, अश्मारोहण भी होता है तथा आचार्य द्वारा विद्यार्थी का स्वीकरण, ब्रह्मचारी को आचार्य द्वारा जल ग्रहण कर दिन में शयन न करने, समिधा का प्रबन्ध करने का आदेश दिया जाता है। इसके बाद विद्यार्थी को सावित्री-मन्त्र का उपदेश दिया जाता है। गायत्री मन्त्र के उपदेश के बाद यज्ञिय अग्नि को प्रथम बार प्रदीप्त करने तथा उसमें आहुति डाली जाती है। इस अवसर पर बोले जाने वाले मन्त्रों से भारतीय शिक्षा के विकास पर बहुत प्रकाश पड़ता है। इसके बाद विद्यार्थी द्वारा माता, पिता तथा सम्बन्धियों से भिक्षा माँगने का विधान है। उपनयन का विधि-विधान सम्पन्न हो जाने पर विद्यार्थी तीन दिन तक कठोर संयम के व्रत का पालन करता था जिसे 'त्रिरात्र व्रत' कहते थे। इस प्रकार विद्यार्थीजीवन विभिन्न प्रकार के अनुशासन के साथ विधिवत् प्रारम्भ होता था।

### 3.7.4 उपनयन संस्कार का प्रयोजन एवम् महत्त्व

उपनयन संस्कार का प्रमुख प्रयोजन वेदाध्ययन व शास्त्राध्ययन में बालक द्वारा प्रवेश करना था। उपनयन संस्कार ज्ञान के सिन्धु की ओर पहला कदम होता था। जिसमें ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये कठोर जीवन जीते हुये गुरु के समीप रहकर ज्ञान प्राप्त करना होता था। स्नातक हों के बाद गुरु ऐसे स्नातकों का समाज से गर्वपूर्वक परिचय करवाता था। स्नातकों की समाज में बहुत प्रतिष्ठा थी। भारतीय संस्कृति ज्ञानसंस्कृति है। इस संस्कृति के निर्माण में उपनयन संस्कार की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह संस्कार शिक्षाक्षेत्र का प्रवेशद्वार था। भारतीय ज्ञान परम्परा

की दृष्टि से उपनयन एक महत्वपूर्ण संस्कार रहा है और ज्ञान परम्परा के प्रति इस असीम योगदान रहा है।

नामकरण, निष्क्रमण,  
चूड़ाकरण, उपनयन

### 3.9 सारांश

व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक जीवन को सफल बनाने में संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यक्ति का नाम इस जगत् में व्यक्ति का न केवल परिचायक होता है अपितु उसके व्यक्तित्व पर उसका कुछ प्रभाव भी होता है। अतः नामकरण संस्कार बहुत महत्वपूर्ण है। शिशु का जब सूत्रपात होता है और उसका जब जन्म होता है तब उसमें माता-पिता का संकल्प निहित होता है। माता-पिता संकल्प व साधनापूर्वक एक शिशु को इस पृथ्वी पर लाते हैं। ऐसे में शिशु जब घर अथवा प्रसूति-कक्ष की सुरक्षित दीवारों के बाहर प्रथम बार गमन करता है तथा जब वह प्रथम बाद परिवार के सीमित सदस्यों की अपेक्षा अधिक लोगों से मिलता है तथा सूर्य आदि प्राकृतिक तत्त्वों के सम्पर्क में आता है ऐसे में विशेष विधि-विधान होना स्वाभाविक है। क्योंकि यह शिशु का संसार के प्रति प्रथम प्रत्यक्ष संसरण होता है। ऐसे में भारतीय जीवनपद्धति में निष्क्रमण संस्कार है। गर्भ के बालों से अनेक प्रकार की स्वास्थ्यगत समस्याएँ व सामाजिक मान्यताएँ जुड़ी हुयी हैं। अतः केशछेदन शिशु के आयुष्य, बल व बुद्धि हेतु आवश्यक है। इसीलिये चूड़ाकरण संस्कार का विधान है। शिक्षा से ही किसी व्यक्ति का जीवन सफल होता है। अतः बालक का ज्ञानप्राप्ति के प्रति प्रथम चरण उपनयन संस्कार है जिसके माध्यम से बालक ज्ञानयज्ञ का साक्षी होने तथा उसमें कुछ आहुति देने जाता है।

इसप्रकार भारतीय जीवनपद्धति में वैदिक काल, सूत्रकाल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न संस्कारों की प्रतिष्ठा रही है और उनमें से अनेक आज भी समाज में प्रतिष्ठित है। इनके माध्यम से परम्परा का प्रवाह अविच्छिन्न है।

### 3.10 शब्दावली

- 1) वपन- बोना
- 2) पञ्च-महायज्ञ- देवयज्ञ (होम), पितृयज्ञ (पितरों के प्रति श्रद्धा, पिण्डदान), नृयज्ञ/अतिथियज्ञ/ (अतिथि -सत्कार), ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), भूतयज्ञ/ बलिवैश्वदेव यज्ञ (प्राणियों को भोज्यपदार्थ प्रदान करना)
- 3) गार्गी वाचक्नवी – एक ब्रह्मवादिनी, वैदिक ऋषिका जिनका वर्ण बृहदारण्यकोपनिषद् में आता है और जिन्होंने याज्ञवल्क्य के साथ संवाद किया था।
- 4) विधिवाक्य- ऐसा वाक्य जिसके द्वारा कोई विधान किया जाय।
- 5) ब्रह्मवर्चस- तप व स्वाध्याय द्वारा प्राप्त शक्ति।
- 6) ऋचा- वैदिक मन्त्र को ऋचा भी कहते हैं।
- 7) भर्त्सनासूचक- निन्दासूचक/निन्दापरक
- 8) आहवनीय अग्नि – हवन आदि के लिये तीन प्रकार की अग्नि।
- 9) शल्यक- साही नामक जन्तु।
- 10)

### 3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अल्लेकर, अनन्त सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षापद्धति, सुविचार प्रकाशन मंडल लिमिटेड, नागपुर, 1935
2. आश्वालायनगृह्यसूत्रम्, सं. पण्डितकुलपति, श्री जीवानन्द विद्यासागर, सरस्वतीयन्त्रे, 1883ई.
3. आश्वालायनगृह्यसूत्रम्, टी. गणपति शास्त्री, हरिदत्ताचार्य मिश्र, महामहिम श्रीमूलकरामवर्मकुलशेखरमहाराजशासनेन राजकीयमुद्रणयन्त्रालये तदध्यक्षेण मुद्रयित्वा प्रकाशितम्, 1923
4. ऋग्वेदसंहिता, वैदिक संशोधन मंडल, पूना, 1941
5. गोभिलगृह्यसूत्रम्, टीका.पं सत्यव्रत सामशास्त्री, मथुरापुरस्थ शास्त्रप्रकाश कार्यालये, 1906ई.
6. तैत्तिरीयब्राह्मणम्, सायणभाष्यसहितम्, आर. शाम. शास्त्री, गवर्नमेण्ट ब्रांच प्रेस, मैसूर 1921
7. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार- सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957
8. पाण्डेय, विजयशंकर, वैदिकसूक्तसंकलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
9. पारस्करगृह्यसूत्रम्, सुधाकर मालवीय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
10. मनुस्मृति, सं. पं. हरिगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस।
11. शतपथ-ब्राह्मण, शांकर भाष्य, अनुवादक- माधवानन्द, अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी, संवत्-1994-97
12. शास्त्री, हरिदत्त, ऋक्सूक्तसङ्ग्रह, रतिराम शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
13. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी, 1985
14. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, यजुर्वेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
15. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, सामवेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
16. वाक्यपदीयम्, प्रथमो भागः, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2016
17. वैदिक सूक्त सङ्ग्रह, गीताप्रेस, गोरखपुर।
18. The Bodhayana Grhyasutra, Ed. R Shama Sastri, Meharchand Lachhmandas, New Delhi, 1982, reprint from 1920
19. The Varaha-Grihyasutra, Ed Raghu Vira, Meharchand Lachhmandas, New Delhi, 1982



---

### 3.12 बोध प्रश्नोत्तर

---

नामकरण, निष्क्रमण,  
चूडाकरण, उपनयन

#### दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1- भारतीय जीवन में संस्कारों का महत्त्व बताते हुये उपनयन संस्कार पर प्रकाश डालिये।
- 2- नामकरण संस्कार पर एक निबन्ध लिखिये।
- 3- चूडाकरण संस्कार से आप क्या समझते हैं? समझाइये।
- 4- निष्क्रमण संस्कार का भारतीय जीवन में क्या महत्त्व है?
- 5- नामकरण संस्कार का वर्णन करते हुये इसके महत्त्व को समझाइये।

#### लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1- नाम के कितने प्रकार हैं?
- 2- चूडाकरण संस्कार करने का उचित समय क्या है?
- 3- 'उपनयन' शब्द से क्या आशय है?
- 4- उपनयन संस्कार हेतु बालक की क्या आयु होनी चाहिये?
- 5- आसुर विवाह क्या है?



ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

---

## इकाई 4 केशान्त, समावर्तन, और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि

---

### इकाई की रूपरेखा

- 4.1 उद्देश्य
- 4.2 प्रस्तावना
- 4.3 संस्कार- सामान्य परिचय
  - 4.3.1 संस्कार शब्द का अर्थ
  - 4.3.2 संस्कारों का प्रयोजन
  - 4.3.3 संस्कारों के प्रकार
  - 4.3.4 संस्कारों की संख्या
- 4.4 केशान्त संस्कार
  - 4.4.1 केशान्त संस्कार का परिचय
  - 4.4.2 विभिन्न कालों में केशान्त संस्कार का स्वरूप
  - 4.4.3 केशान्त संस्कार का समय एवम् विधि-विधान
  - 4.4.4 केशान्त संस्कार का महत्त्व
- 4.5 समावर्तन संस्कार
  - 4.5.1 समावर्तन संस्कार का परिचय
  - 4.5.2 समावर्तन संस्कार का समय एवम् विधि-विधान
  - 4.5.3 समावर्तन संस्कार का महत्त्व
- 4.6 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार
  - 4.6.1 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार का परिचय
  - 4.6.2 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार का उद्भव एवम् विकास
  - 4.6.3 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार का विधि-विधान
  - 4.6.4 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार का महत्त्व
- 4.9 सारांश
- 4.10 शब्दावली
- 4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 4.12 बोध प्रश्नोत्तर

---

### 4.1 उद्देश्य

---

- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों को गृह्यसूत्रों के अनुसार संस्कारों से अवगत करवाना है।

- इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी केशान्त, समावर्तन, और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- इस इकाई के माध्यम से विद्यार्थी भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कारों के शास्त्रीय व लौकिक पक्ष में परस्पर सम्बन्ध एवम् परम्परा के नैरन्तर्य के विषय में जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन द्वारा विद्यार्थियों को भारतीय समाज में जीवन की महत्ता का भी ज्ञान होगा।
- इस इकाई के अध्ययन से भारतीय समाजव्यवस्था के सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक व मनोवैज्ञानिक पक्ष को जानने में सहायता मिलेगी।

---

## 4.2 प्रस्तावना

---

संस्कार भारतीय जीवन के पथ-प्रदर्शक तत्त्व हैं। इनके माध्यम से जीवन के नियमन व दिशा-निर्देशन का कार्य वैदिक काल से लेकर आज तक निरन्तर जारी है। वैदिक-संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, वेदाङ्गों में संस्कारों पर सम्यक् विचार मिलता है। ज्ञानपरम्परा के विकास के साथ ही संस्कारों का भी विकास होता गया तथा विभिन्न संस्कारों के विधि-विधानों को भी विस्तार प्राप्त हुआ। कालान्तर में संस्कारों में नवीन क्रियाकलापों का योग भी हुआ परन्तु मूल सर्वथा प्रभावरहित रहा।

भारतीय समाज में सोलह संस्कारों पर सर्वसम्मति है। इनका विकास एक दीर्घकालीन चिन्तन का परिणाम है। इनके क्रियाकलापों व व्यवहार की वैज्ञानिकता भारतीय जीवन के प्रवाह को सशक्त बनाती है तथा सौ वर्ष जीवन के विचार को संबल देती है। ये संस्कार व्यक्ति के व्यक्तित्वविकास के समाज द्वारा व्यहृत व शास्त्र द्वारा प्रवर्तित साधन हैं। इनके माध्यम से सहजता से व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का परिष्कार सम्भव है।

केशान्त व समावर्तन का सीधा सम्बन्ध शिक्षा से है। ये संस्कार इस बात के द्योतक हैं कि जातक ने शिक्षा प्राप्त की है तथा वह अब गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकता है। और्ध्वदैहिक क्रिया यद्यपि अन्त्येष्टि संस्कार से सम्बन्धित हैं परन्तु यदि गहनता से देखा जाय तो इसमें सम्पन्न होने वाले समस्त विधि-विधान व्यक्ति को और अधिक प्रकृति के निकट ले जाते हैं तथा व्यक्ति का मानसिक सम्बल बनते हैं।

---

## 4.3 संस्कार- सामान्य परिचय

---

जन्म लेना इस सृष्टि की साधारण घटना है जो कि सभी प्रकार के जीवों जरायुज, अण्डज, उद्भिज व स्वेदज में होती ही है। ऐसा माना जाता है कि मनुष्य जीवों से भिन्न इसीलिये है क्योंकि उसमें विचार की श्रेष्ठ शक्ति है। मानव का जन्म भी साधारण ही है परन्तु हिन्दू परम्परा में जन्म साधारण होते हुये भी विशेष है क्योंकि प्रत्येक जन्म का कुछ उद्देश्य होता है। जीव किसी न किसी उद्देश्य से जीवन ग्रहण करता है। इसीलिये जीवन ग्रहण करना यहाँ विशेष है। जीवन का सूत्रपात ही यहाँ गर्भाधान संस्कार से होता है। जीवन आद्यन्त संस्कार से आवृत्त है। विभिन्न संस्कारों के माध्यम से ही व्यक्ति अपने भौतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक व अत्मिक लक्ष्यों को प्राप्त करता है।

### 4.3.1 संस्कार शब्द का अर्थ

संस्कार शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृञ्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय (सम्+कृञ्+घञ्) लगाने से बनता है। इसका अर्थ है जिससे परिष्कार किया जा सके, जिससे शुद्ध किया जा सके वह संस्कार है। संस्कारों द्वारा विभिन्न विकारों का शमन होता है तथा व्यक्ति के गुणों का वर्धन होता है।

### 4.3.2 संस्कारों का प्रयोजन

हिन्दू जीवन में संस्कारों का प्रधान प्रयोजन विभिन्न प्रकार के विकारों को दूर कर व्यक्तित्व का विकास व व्यक्ति के जीवन को दिशा देना है। एक स्वस्थ, सशक्त, मेधासम्पन्न, दीर्घायु शिशु का जन्म किसी भी समाज की प्राथमिकता है। भारतीय समाज संस्कारों के माध्यम से वैदिक काल से ही इसके लिये विशेष प्रयास करता रहा है। यहाँ जीवन माता-पिता द्वारा संतानोत्पत्ति के संकल्प के साथ गर्भाधान संस्कार के साथ प्रारम्भ होता है तथा पञ्चतत्त्व का बना यह शरीर आत्मा के निर्गमन के बाद पुनः पञ्चतत्त्व में अन्त्येष्टि संस्कार के साथ विलीन हो जाता है। यह व्यवस्था अद्भुत है जिसमें भारतीय दार्शनिक मान्यता कि परमात्मा का अंश यह आत्मा है, पूर्णरूपेण परिलक्षित होती है। संस्कारों का प्रयोजन एक उन्नत जीवनदर्शन के साथ एक उन्नत व उत्कृष्ट समाज का निर्माण है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति वैयक्तिक, आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक रूप से सशक्त हो।

#### 4.3.2.1 संस्कारों के प्रकार

संस्कारों के प्रकार व संख्या के विषय में अलग-अलग ग्रन्थों का अलग-अलग मत है। परन्तु साधारण व प्रसिद्ध विचार यह है कि संस्कार संख्या में सोलह हैं जिनमें से गर्भाधान, पुंसवन व सीमन्तोन्नयन प्राग्-जन्म संस्कार हैं, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण व कर्णवेध बाल्यावस्था के संस्कार हैं, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त तथा समावर्तन शैक्षणिक संस्कार हैं, विवाह गृहस्थाश्रम में प्रवेश का द्वार है तथा अन्त्येष्टि संस्कार इस जीवन की पूर्णता का संस्कार है।

### 4.3.4 संस्कारों की संख्या

संस्कारों का प्रथम विस्तृत वर्णन गृह्यसूत्रों में मिलता है। गृह्यसूत्र में संस्कार 'गृह्ययज्ञ' के रूप में वर्णित हैं। अलग-अलग गृह्यसूत्रों में संस्कारों की संख्या भी प्रायः भिन्न है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में ग्यारह संस्कार हैं, पारस्कर गृह्यसूत्र, वाराह गृह्यसूत्र व बौधायन गृह्यसूत्र में संस्कारों की संख्या तेरह है। वैखानस गृह्यसूत्र में संस्कारों की संख्या अठारह है।

गृह्यसूत्रों में वर्णित संस्कारों व उनके विधि-विधानों को धर्मसूत्रों, स्मृतियों व पुराणों में विस्तार प्राप्त हुआ है।

आज सामान्यतः संस्कारों की संख्या सोलह मानी जाती है - गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह एवम् अन्त्येष्टि। इन सोलह संस्कारों में से प्रत्येक का बीज वेदों तथा गृह्यसूत्रों में विद्यमान है।

## 4.4 केशान्त संस्कार

केशान्त संस्कार का सम्बन्ध ब्रह्मचारी के प्रथम बार श्मश्रु के क्षौरकर्म से है। 'केशान्त' का शाब्दिक अर्थ है केश का अन्त। यहाँ 'केश' शब्द का तात्पर्य श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी-मूँछ के केश से है उसी का अन्त करना अर्थात् उसी का क्षौरकर्म 'केशान्त संस्कार' है।-

केशशब्दे तु श्मश्रुशब्दान् कारयेत्॥आध्यात्मिक गृह्यसूत्र, 1/18/3

केशान्त संस्कार वैदिक व्रतों में से एक है। कुछ गृह्यसूत्रों में केशान्त संस्कार को गोदान संस्कार भी कहा गया है क्योंकि इस अवसर पर ब्रह्मचारी को आचार्य को एक गाय दान में देनी होती है।

### 4.4.1 केशान्त संस्कार का परिचय

केशान्त संस्कार का सम्बन्ध आचार्य के पास गुरुकुल में अध्ययनरत ब्रह्मचारी के प्रथम बार श्मश्रु आदि के कर्तन से है। कुछ गृह्यसूत्र इस संस्कार के साथ ही अध्ययन की पूर्णता मानते हैं जबकि कुछ गृह्यसूत्र इस संस्कार को अध्ययन काल का ही एक संस्कार मानते हैं जिसमें एक बार पुनः ब्रह्मचर्य व्रत का स्मरण कर उसका दृढ़ता से पालन किया जाता है। इस संस्कार के अवसर पर गोदान करने का विधान है अतः कुछ गृह्यसूत्र इसे गोदान संस्कार कहते हैं।

### 4.4.2 विभिन्न कालों में केशान्त संस्कार का स्वरूप

चूंकि केशान्त अर्थात् शरीर पर आये अवांछित केशों का कर्तन व क्षौर मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता से जुड़ा हुआ है अतः यह कार्य तो वैदिक काल के पूर्व से ही होता आ रहा होगा। गृह्यसूत्रों तक आते-आते उपनयन संस्कार द्वारा गुरुकुल में प्रवेशकर अध्ययन कर रहे ब्रह्मचारियों के केशान्त संस्कार के रूप में यह विकसित हो गया। यह यौवन के आगमन का भी द्योतक है। कालान्तर में विभिन्न परिस्थितियों के कारण केशान्त संस्कार को ब्रह्मचर्य की समाप्ति का सूचक भी माना जाने लगा। इस मान्यता के अनुसार अठारह वर्ष की आयु तक विद्यार्थी जीवन की समाप्ति मानी गयी परन्तु यह सर्वप्रचलित मत नहीं था। ऐसा प्रायः उन्हीं ब्रह्मचारियों के साथ होता था जिनको किसी कारणवश अथवा परिवार की परिस्थितिवश अल्पायु में ही गुरुकुल छोड़ना पड़ता था। मध्यकाल के प्रभाववश बालविवाह के प्रचलित होने पर केशान्त अथवा गोदान को ब्रह्मचर्य की समाप्ति मानने की धारणा प्रधान हो गयी। प्रो. राजबली पाण्डेय ने इस सन्दर्भ में अपनी पुस्तक 'हिन्दू संस्कार' में लिखा है कि, 'अल्पायु में विवाह के समर्थक अपने पक्ष की पुष्टि में यह युक्ति देने लगे कि सोलह वर्ष की आयु में ब्रह्मचर्य की समाप्ति किसी भी प्रकार शास्त्रीय नियम के विपरीत नहीं है, क्योंकि यदि उपनयन पाँच वर्ष की आयु में किया जाय तो वेदों के स्वाध्याय के लिये बारह वर्ष का समय प्राप्त हो ही जाता है। इस प्रकार आरम्भ में जो सुविधा थी, वही आगे चलकर लोगों के अधिकार और विशेषाधिकार में परिणत हो गयी, किन्तु निश्चय ही इसका परिणाम हिन्दू समाज के लिए घातक हुआ।' (हिन्दू संस्कार, पृ. 185-186)

केशान्त व समावर्तन दोनों में ही क्षौरकर्म होता है इसीलिये इस प्रकार का भ्रम और प्रबल हुआ। ब्रह्मचर्य-जीवन की समाप्ति का सूचक समावर्तन संस्कार है न कि केशान्त संस्कार।

### 4.4.3 केशान्त संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

केशान्त संस्कार उस समय सम्पन्न होता था जब ब्रह्मचारी के श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी आदि आ

जाती थी। गृह्यसूत्रों के अनुसार इस संस्कार को सम्पन्न करवाने की आयु सोलह वर्ष है-

...षोडशवर्षस्य केशान्तः।, पारस्कर गृह्यसूत्र, 2/1

गोभिल गृह्यसूत्र ने केशान्त के उपनयन काल से सोलहवें वर्ष करने का विधान किया है। अर्थात् जिसका उपनयन आठवें वर्ष हुआ होगा उसका केशान्त चौबीसवें वर्ष होगा। यहाँ केशान्त को गोदान कहा गया है तथा उसे समावर्तन संस्कार भी माना गया है-

अथातः षोडशे वर्षे गोदानम्।, गोभिल गृह्यसूत्र, 3/1/1

आश्वालायन गृह्यसूत्र के अनुसार गोदान अर्थात् केशान्त सोलहवें वर्ष होना चाहिये-

ऐतेन गोदानम् षोडशे वर्षे।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 1/18/1-2

वाराह गृह्यसूत्र भी सोलहवें वर्ष में गोदान अर्थात् केशान्त का विधान करता है-

षोडशवर्षस्य गोदानम्।, वाराह गृह्यसूत्र, 9/1

केशान्त संस्कार के अन्तर्गत चूड़ाकरण संस्कार के समान ही समस्त विधि-विधान किये जाते हैं। इस अवसर पर उच्चरित मन्त्र भी वही होते हैं जो चूड़ाकरण संस्कार के समय बोले गये थे। चूड़ाकरण संस्कार में सिर के केश का छौरकर्म होता है जबकि केशान्त में श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी के केशों का। गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार गोदान अर्थात् केशान्त संस्कार में वेदाध्ययन में रत आश्रम में निवास करने वाला ब्रह्मचारी जिस समय केश कटवाये, तब उस समय वह कक्ष (बगल), वक्षस्थल, उपस्थ अर्थात् लिङ्ग और शिखापर्यन्त रोम भी कटवाये-

ब्रह्मचारी केशान्तान्कारयतेसर्वाण्यङ्गलोमानिसंहारयते।, गोभिल गृह्यसूत्र, 3/1/3-4

'ब्रह्मचारी' ब्रह्मवेदः तद्ग्रहणाचारविशिष्टः आद्याश्रमी, यदैव 'केशान्तान् कारयते' तदैव सर्वाणि अङ्गलोमानि संहारयते' कक्षवक्षोपस्थशिखाकेशानपि...।, गोभिल गृह्यसूत्र, 3/1/3-4 पर टीका

इस अवसर पर नापित अर्थात् नाई को परिश्रमार्थ नेग देने का विधान है। गोभिल धर्मसूत्र नाई को एक अजः अर्थात् बकरा देने का विधान करता है -

अजः केशप्रतिग्राहाया।, गोभिल गृह्यसूत्र, 3/1/8

इस केशान्त संस्कार के सम्पन्न होने पर ब्रह्मचारी द्वारा पुनः एक वर्ष तक कठोर व्रत के पालन का विधान है -

संवत्सरमादिशेत्।, गोभिल गृह्यसूत्र, 3/1/9

एवम् गोदानं कृत्वा संवत्सरं व्रतमादिशेत् वक्ष्यमाणेन विधिना चरेत्।, गोभिल गृह्यसूत्र, 3/1/10 पर टीका

#### 4.4.4 केशान्त संस्कार का महत्त्व

केशान्त संस्कार सीधे रूप से शारीरिक शुचि से जुड़ा हुआ है। हिन्दू परम्परा में बाह्य-अभ्यन्तर शुचि अर्थात् पवित्रता पर बहुत ध्यान दिया जाता है। केशान्त संस्कार युवावस्था के आगमन पर शरीर पर उत्पन्न अनावश्यक केशों से मुक्ति का विधान करता है। यह संस्कार ब्रह्मचारी के गुरुकुलवास की अवधि में ही सम्पन्न होता है। सोलह वर्ष की आयु में इसे करने का विधान है ब्रह्मचारी इस समय युवावस्था के द्वार पर होता है अतः ऐसे समय उसे पुनः ब्रह्मचर्य व्रत का

स्मरण करवाया जाता है तथा उसे विद्याध्ययन हेतु आवश्यक कठिन व्रतों का वर्षपर्यन्त पालन करना होता है।

## 4.5 समावर्तन संस्कार

समावर्तन संस्कार विद्याध्ययन के पूर्ण होने व ब्रह्मचर्य-व्रत की समाप्ति का सूचक है। यह संस्कार विद्यार्थी-जीवन का अन्त और गृहस्थाश्रम में प्रवेश की योग्यता का द्योतक है। उपनयन संस्कार द्वारा विद्याध्ययन हेतु गया ब्रह्मचारी समावर्तन संस्कार द्वारा विद्याध्ययन पूर्णकर अपने घर वापस लौटता है। यह उसके व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक जीवन की ओर उन्मुखीकरण है। समावर्तन के अवसर पर 'स्नान' कार्य प्रमुख है क्योंकि इसी के माध्यम से विद्याध्ययन कर विद्यार्थी स्नातक बनता है।

शिक्षा-क्षेत्र का यह महत्वपूर्ण संस्कार है। इससे प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा के महत्त्व व उसकी गम्भीरता का पता चलता है।

### 4.5.1 समावर्तन संस्कार का परिचय

समावर्तन संस्कार ब्रह्मचारी द्वारा विद्याध्ययन पूर्णकर स्नातक होकर घर लौटने के अवसर पर सम्पन्न किया जाता है। ज्ञान एक सागर के समान है। अतः अध्ययन पूर्ण करना उस सागर में स्नान के समान है –

वेदं समाप्य स्नायात्, पारस्करगृह्यसूत्र, 2/8

वेदे गुरुणाऽनुज्ञातः स्नायात्, वाराहगृह्यसूत्र, 9/6

वेदमधीत्य स्नास्यन्नित्युक्तं समावर्तनम्, बोधायनगृह्यसूत्र, 6/1

इसीलिये अध्ययन के उपरान्त स्नान करके समस्त-विधिविधानपूर्वक घर की ओर लौटने के इच्छुक ब्रह्मचारी को स्नातक कहते हैं और घर लौटने को समावर्तन स्नातक उस व्यक्ति को कहा जाता है जिसने विद्या का सागर पार कर लिया है।

### 4.5.2 समावर्तन संस्कार का समय एवम् विधि-विधान

हिन्दू जीवन चार आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास से आबद्ध है। इन चारों आश्रमधर्मों का पालन क्रमानुसार होना चाहिये। व्यक्ति ब्रह्मचर्य में विद्याध्ययन पूर्ण कर विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है पुनः गृहस्थाश्रम के दायित्व पूर्णकर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है उसके बाद सन्यास आश्रम में जीवन व्यतीत करता है। इसमें से ब्रह्मचर्य व गृहस्थाश्रम दोनों को भारतीय परम्परा में सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है क्योंकि इन्हीं पर समस्त पारिवारिक, सामाजिक क्रियाकलाप टिके हुये हैं।

विद्याध्ययन पूर्ण कर स्नान द्वारा ब्रह्मचारी स्नातक बनकर जब घर लौटता था तो उसे सम्यक् आवर्तन अर्थात् भली-भाँति लौटना कहते थे। इस अवसर पर सम्पन्न होने वाले संस्कार को समावर्तन संस्कार कहते हैं। समावर्तन संस्कार उन्हीं का किया जाता था जो अपने अध्ययन को पूर्ण करते थे तथा व्रतों का पालन भी करते थे। ब्रह्मचर्य सम्बन्धी विधि-विधानों का पालन न करने वाले तथा कुछ मन्त्रों को कण्ठस्थ करने वालों को समावर्तन का अधिकार नहीं था-

अन्यो वेदपाठी न तस्य स्नानम्। मानवगृह्यसूत्र, 1/2/3

स्नातक तीन प्रकार के कहे गये हैं। इन स्नातकों का वर्गीकरण उनके अध्ययन व ब्रह्मचर्य काल के आधार पर है। जिसने विद्या में स्नान कर लिया वह विद्या-स्नातक और जिसने व्रतों में स्नान कर लिया उसे व्रत-स्नातक कहा जाता था और जिसने विद्या व व्रत दोनों में स्नान कर लिया अर्थात् दोनों का ज्ञान प्राप्त कर लिया उसे विद्याव्रतस्नातक कहा जाता था –

**त्रयः स्नातका भवन्ति विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकः।, पारस्करगृह्यसूत्र, 2/6**

वेदाध्ययन पूर्ण कर जो व्रत (ब्रह्मचर्य व्रत) को न समाप्त कर समावर्तन करते थे, वे विद्यास्नातक कहलाते थे। जो व्रत समाप्तकर वेदाध्ययन न समाप्तकर समावर्तन करते थे, वे व्रतस्नातक कहलाते थे। जो वेदाध्ययन और व्रत की अवधि दोनों को पूर्ण कर समावर्तन करते थे, वे विद्याव्रतस्नातक कहलाते थे-

**समाप्य वेदमसमाप्य व्रतं यः समावर्तते स विद्यास्नातकः। समाप्य व्रतमसमाप्य वेदं यः समावर्तते स व्रतस्नातक इति। उभयं समाप्य यः समावर्तते स विद्याव्रतस्नातक इति। पारस्करगृह्यसूत्र, 2/6**

स्नातकों में विद्याव्रत स्नातक होना प्रतिष्ठा का विषय था।

समावर्तन संस्कार से ब्रह्मचर्य आश्रम का जीवन पूर्ण होता था और व्यक्ति विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु उन्मुख होता था। समावर्तन संस्कार एक प्रकार से विवाह हेतु अनुपतिपत्र था इसके बाद व्यक्ति पारिवारिक जीवन में प्रवेश कर परिवार व समाज के भरण-पोषण के दायित्व का निर्वहन करता था। वैदिककाल के बाद समावर्तन संस्कार को विवाह के लिये अनुमति के रूप में देखा जाने लगा और विवाह के पूर्व समावर्तन ने एक सामान्य अनुष्ठान का रूप धारण कर लिया जिससे इस संस्कार का मूल प्रयोजन अप्रधान हो गया। आजकल विवाहपूर्व उपनयन के साथ ही समावर्तन संस्कार किया जाता है। वस्तुतः यह उस समय किया जाता था जब व्यक्ति अपनी शिक्षा पूर्ण कर लेता था। इसके बाद निकट भविष्य में प्रायः उस व्यक्ति का विवाह सम्पन्न होता था। विवाह तत्काल नहीं होता था। कालान्तर में माना जाने लगा कि व्यक्ति को किसी आश्रम के विना नहीं रहना चाहिये अन्यथा वह पाप का भागी बनता है, अतः समावर्तन के बाद तत्काल विवाह होने लगा। मध्यकाल आते-आते स्थिति ऐसी हो गयी कि विवाह तय हो जाने के बाद समावर्तन होने लगा।

समावर्तन संस्कार उपनयन संस्कार के बाद किया जाना चाहिये। समावर्तन शिक्षा की समाप्ति व ब्रह्मचर्य की समाप्ति का भी द्योतक है। इसीलिये शिक्षा की समाप्ति तथा सामान्यतः ब्रह्मचर्य व्रत पूर्णकरने के समय समावर्तन होना चाहिये।

समावर्तन संस्कार के अन्तर्गत स्नान महत्त्वपूर्ण है परन्तु स्नान से पूर्व विद्यार्थी को विद्यार्थि-जीवन के समाप्ति हेतु गुरु से अनुमति माँगनी होती थी तथा गुरुदक्षिणा भी देना होता था।

**विद्यान्ते गुरुमर्थेन निमन्त्र्य कृतानुज्ञानस्य वा स्नानमिति, आ. गृ. सू. 3/8**

**वेदे गुरुणाऽनुज्ञातः स्नायात्।, वाराहगृह्यसूत्र, 9/6**

समावर्तन हेतु गुरु की आज्ञा लेना अनिवार्य था। विद्यार्थी विद्याध्ययन पूर्ण होने तक गुरु को कुछ नहीं प्रदान करता था। अतः विद्याध्ययन पूर्ण होने पर गुरु को अपनी सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा देने का विधान था। इसके अन्तर्गत विद्यार्थी द्वारा गुरु को भूमि, स्वर्ण, गौ, अश्व, छत्र,



उपानह, वस्त्र, फल तथा वनस्पतियाँ आदि भेंट करना चाहिये। अनेक विद्वान् दक्षिणा में केवल गौ का विधान करते हैं। गोभिल गृह्यसूत्र में गोदान और समावर्तन को एक ही माना गया है। इस अवसर पर केशान्त संस्कार की भाँति गोदान का महत्त्व है।

गुरु द्वारा दिया गया ज्ञान अमूल्य है। उसका मूल्य दिया ही नहीं जा सकता। गुरु के ऋण से उद्धार नहीं हुआ जा सकता परन्तु विद्यार्थियों को गुरु के प्रति श्रद्धा व कृतज्ञताज्ञापन हेतु दक्षिणा का विधान है। यदि कोई विद्यार्थी किसी प्रकार की वस्तु दक्षिणा में दे पाने में असमर्थ हो तो भी उसे गुरु के पास जाकर अपने विद्याध्ययन समाप्ति व समावर्तन हेतु औपचारिक अनुमति लेनी ही होती थी। गुरु हेतु तो किसी प्रकार की वस्तु अथवा धन की अपेक्षा विद्यार्थी में विकसित गुण प्रसन्नता का विषय होते हैं। गुरु तो विद्यार्थी के विद्या व गुण से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

समावर्तन हेतु किसी शुभ तिथि का चयन किया जाता था। सर्वप्रथम ब्रह्मचारी को स्वयं को प्रातःकाल एक कक्ष में बन्द रखना होता था। भारद्वाजगृह्यसूत्र का इस सन्दर्भ में कथन है कि ऐसा इसलिये किया जाता था कि जिससे स्नातक के तेज से सूर्य अपमानित न हो, क्योंकि सूर्य स्नातक के तेज से ही प्रकाशित होता है। मध्याह्न में ब्रह्मचारी कक्ष से बाहर आकर गुरु चरणों में प्रणाम कर अग्नि को अन्तिम आहुति प्रदान करता था। वहाँ आठ कलश रखे जाते थे तथा मन्त्रों के साथ ब्रह्मचारी अभिषिक्त होता था।

**गुरुणानुज्ञातो विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः षडङ्गमेके ...गृह्यामत्येकस्मादपो गृहीत्वा तेनाभिषिञ्चितो,** पारस्करगृह्यसूत्र, 2/8

इसप्रकार विभिन्न ऋचाओं के उच्चारण के साथ अन्य कलशों से वह स्नान करता था। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के चिह्न मेखला, मृगचर्म तथा दण्ड आदि को जल में फेंककर वह नवीन कौपीन वस्त्र धारण करता था। दधि-तिल मिश्रित भोजन कर अपने श्मश्रु, केश व नखों को कटवाकर मन्त्रोच्चारपूर्वक उदुम्बर वृक्ष की टहनी से दन्तधावन करता था -

**उदुत्तममिति मेखलामुन्मुच्य दण्डं निधाय वासोऽन्यत्परिधायाऽऽदित्यमुपतिष्ठते-  
उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो...तिलान्वा प्राश्य जटालोमनखानिसंहृत्यौदुम्बरेण दन्तान्धावेता,**  
पारस्करगृह्यसूत्र, 2/8

चूँकि विद्यार्थी विद्याध्ययन पूर्ण कर समावर्तन द्वारा सामाजिक जीवन में प्रवेश करता है। इसलिये इस अवसर पर वह सुगन्धित जल से स्नान करता था तथा उसके शरीर में उबटन लगाया जाता था व इन्द्रियों के तृप्त होने की इच्छा की जाती थी। ब्रह्मचारी के लिये सामान्य व रंगा हुआ वस्त्र पहनना व माला आदि धारण करना निषिद्ध था। समावर्तन के अवसर पर उसे आभूषण, अंजन(काजल), कर्णपूर, उष्णीष, छत्र, उपानह और दर्पण विधिवत् दिये जाते थे। ये सब ब्रह्मचारी हेतु वर्जित थे। सुरक्षा हेतु छड़ी भी दी जाती थी।

**उत्साद्य पुनः स्नात्वाऽनुलेपनं...।** पारस्करगृह्यसूत्र, 2/8

स्नातक नया वस्त्र पहनकर तथा अलंकारों से भूषित होकर रथ अथवा हाथी पर चढ़कर गुरुकुल से समाज की ओर प्रस्थान करता था। इस अवसर पर आचार्य स्नातक का समाज से एक सुयोग्य विद्वान् के रूप में परिचय करवाते थे -

**महद्वै भूतं स्नातको भवतीति विज्ञायते।** आश्वलायन गृह्यसूत्र, 3/8/8

इसप्रकार स्नातक विद्याध्ययन के बाद समावर्तन संस्कार के उपरान्त अपने पारिवारिक व सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होता था।

### 4.5.3 समावर्तन संस्कार का महत्त्व

समावर्तन संस्कार का जीवनपद्धति में बहुत महत्त्व था। यह व्यक्ति के शिक्षित होने, स्नातक व सदाचारी होने का प्रमाण भी था। विद्यार्थीजीवन की समाप्ति पर ब्रह्मचारी को प्रवृत्ति मार्ग अथवा निवृत्ति मार्ग में से किसी एक का चयन करना होता था। विवाह द्वारा गृहस्थाश्रम में जाकर वह प्रवृत्तिमार्ग का अनुसरण करता था तथा सांसारिक बन्धनों से दूर होकर तप इत्यादि में जीवन लगाकर वह निवृत्तिमार्ग का अनुसरण करता था। प्रवृत्तिमार्ग ग्रहण करने वाले 'उपकुर्वाण' व निवृत्तिमार्ग ग्रहण करने वाले 'नैष्ठिक' कहलाते थे।

समावर्तन संस्कार से यह परिलक्षित होता है कि भारत में ज्ञान, शिक्षा, विद्यार्थी व गुरु का क्या महत्त्व रहा है। समाज में स्नातकों को कितना उच्च स्थान प्राप्त था यह भी समावर्तन संस्कार से ज्ञात होता है।

## 4.6 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार

हिन्दू जीवनपद्धति में शरीर के उत्स अर्थात् गर्भाधान से लेकर इस शरीर के पञ्चतत्त्व में विलीन होने तक सोलह संस्कार हैं। जीवन के प्रत्येक स्तर पर विविध विधि-विधानों के माध्यम से जीवन का संस्कार करना हिन्दू जीवनपद्धति की विशेषता है। आत्मा की अमरता में विश्वास करने वाली भारतीय संस्कृति इस लोक के बाद परलोक में विश्वास रखती है। इसीलिये यहाँ व्यक्ति की मृत्यु पर अन्त्येष्टि संस्कार और उसके निमित्त विभिन्न और्ध्वदैहिक क्रियाओं का विधान है। इससे लोक और परलोक दोनों सुधरता है।

### 4.6.1 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार का परिचय

जीवन का अन्त हो जाने पर जब इस शरीर से आत्मा प्रयाण कर जाती है तब प्राणहीन शरीर को 'शव' कहते हैं और व्यक्ति को मृतक। इसके निमित्त भी हिन्दू परम्परा में अनेक कार्य व विधि-विधान किये जाते हैं जिन्हें और्ध्वदैहिककर्म कहते हैं। ये समस्त कर्म अन्त्येष्टि संस्कार के अन्तर्गत किये जाते हैं।

अन्त्येष्टि-क्रियाओं का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होता है। हिन्दुओं में सामान्यतः शव के दाह तथा निखात का प्रचलन है। यह प्रचलन वैदिक काल से ही है। शव का निखात मृतक के सम्बन्धियों के जीवित न रहने, संक्रामक रोग आदि से मृत्यु होने की स्थिति में प्रायः होता है। बच्चों व साधु-सन्यासियों के शव का भी निखात किया जाता है।

गृह्यसूत्रों में शव-निखात का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। प्राचीनकाल से आजतक मृतक-शरीर का शव-दाह ही सर्वाधिक प्रचलित व मान्य व्यवस्था रही है। वस्तुतः और्ध्वदैहिककर्म और अन्त्येष्टि संस्कार पितृयज्ञ है।

### 4.6.2 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि का उद्भव एवम् विकास

और्ध्वदैहिक क्रिया का उल्लेख वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऋग्वेद व अथर्ववेद में प्राप्त होता है। गृह्यसूत्रों के अनुसार केवल दो वर्ष से कम आयु होने पर शव का दाहसंस्कार नहीं किया

जाता है। अथर्ववेद में मृत्यु के बाद व्यक्ति को पुनर्जीवित करने के लिये मन्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। (अथर्ववेद, 7/53) वहाँ शव को स्नान करवाने तथा शव के पंजों को किसी रस्सी अथवा सुतली आदि से बाँधने के विधान का भी उल्लेख मिलता है। तैत्तिरीय आरण्यक व अथर्ववेद में शवयात्रा तथा उसके साथ शोकाकुल परिजनों, सम्बन्धियों व सहकर्मियों के रहने का भी वर्णन मिलता है। साथ ही मृत्यु पर शोक, अस्थियों के विसर्जन, अशौच तथा अशौचनिवारणार्थ स्नान, अपवित्र अग्नि को हटाकर घर में यज्ञिय अग्नि के प्रदीप्त करने, भोजन आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है। आज भी शव का दाह, अभिषिञ्चन, श्मशानचिति, उदक-कर्म तथा शान्तिकर्म ये चार बातें समाज में प्रचलित हैं। संस्कार के मौलिक तत्त्व आज भी समाज में परिलक्षित होते हैं।

वैदिक संहिताओं के बाद अन्त्येष्टि के अवसर की क्रियाओं का वर्णन कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय आरण्यक के छठे अध्याय में प्राप्त होता है जहाँ पितृमेध शीर्षक के अन्तर्गत दाह-संस्कार से लेकर ग्यारहवें दिन की श्राद्ध 'एकादशाह' तक में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र क्रमशः दिये गये हैं। कतिपय गृह्यसूत्रों में अन्त्येष्टि संस्कार और इस निमित्त की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का वर्णन है तथा विधि-विधानों को अधिक विस्तृत रूप में बताया गया है। भारद्वाज व बौधायन गृह्यसूत्र में विधि-विधान विस्तृत व व्यवस्थित रूप में प्राप्त होते हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र का वह भाग जो अन्त्येष्टि क्रियाओं का निरूपण करता है, आज उपलब्ध नहीं है। हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र में अन्त्येष्टि क्रियाओं का उल्लेख है। यही इसविषयक परवर्ती रचनाओं का आधार भी है।

#### 4.6.3 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार विधि-विधान

मृत्यु मानवजीवन की अवश्यंभावी घटना है। जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है। अतः व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसे मोक्ष प्राप्त हो, उसका अगला जन्म यदि हो तो उत्तम योनि में हो तथा आत्मा को सद्गति प्राप्त हो इसलिये और्ध्वदैहिक क्रियाओं तथा अन्त्येष्टि संस्कार का विधान है।

भारतीय परम्परा में मृत्यु-आगमन पर विभिन्न दान देने का प्रचलन है जिसमें से गोदान बहुत प्रसिद्ध है। इससे यह माना जाता है कि गो वैतरणी पार करवाती है। सूत्रकाल में यह गाय अनुस्तरणी कहलाती थी जिसे श्मशान से दूर भाग जाने के लिये उन्मुक्त छोड़ दिया जाता था।

**तामनुस्तरणीं गां कुर्यात्॥, आश्वलायन गृह्यसूत्र, 4/2/5**

कालान्तर में इसे ब्राह्मण को दान में दिया जाने लगा। मृत्यु निकट आने पर व्यक्ति का शरीर स्वच्छ बालूदार भूमि पर रख दिया जाता है। इसके पश्चात् तीन अग्नि अथवा एक गार्हपत्य अग्नि के समीप अर्धी तैयार की जाती है। जिसपर व्यक्ति को दक्षिण की ओर सिर करके लेटा दिया जाता है तथा उसके कानों में विभिन्न मन्त्रों का पाठ किया जाता है।

बौधायन के अनुसार मृत्यु के तुरन्त बाद मृतक के दाहिने जांघ का स्पर्श कर गार्हपत्य अग्नि में शुद्ध घृत से चार बार आहुतियाँ देनी चाहिये। भारद्वाज के अनुसार उक्त आहुतियाँ आहवनीय अग्नि से देनी चाहिये। आश्वलायन के अनुसार आहुतियों को एक भिन्न क्रम में देना चाहिये।

गृह्यसूत्रों के अनुसार होम के अनन्तर उदुम्बर की लकड़ी की अर्धी बनाकर उस पर रोएँदार कृष्ण मृगचर्म बिछाकर शव का सिर दक्षिण की ओर करके उसे लेटा देना चाहिये। इसके बाद शव को मन्त्रोच्चारपूर्वक रंगरहित अर्थात् श्वेत, जिसके किनारे कटे-छँटे न हों, ऐसे वस्त्र से ढँक

दिया जाता है तथा अर्थी को श्मशान की ओर ले जाते हैं। शव को बैलगाड़ी पर ले जाने का विधान गृह्यसूत्रों में मिलता है तथा इस अवसर पर इस आशय का मन्त्र गाया जाता है कि- तुम्हारे जीवन के वहन के लिये मैं इन दो बैलों को गाड़ी में जोतता हूँ, जिससे तुम यमलोक को जा सकते हो, जहाँ पुण्यकर्मा लोग जाते हैं।' आश्वलायन गृह्यसूत्र में एक बैल के उपयोग की बात कही गयी है।-

**एके गोयुक्तेन पीठचक्रेण शकटादिना...** आश्वलायन गृह्यसूत्र, 4/2/3

शवयात्रा का नेतृत्व सामान्यतः मृतक का ज्येष्ठ पुत्र अथवा प्रमुख शोकाकुल सम्बन्धी करता है। दो वर्ष से ऊपर की आयु के सभी मृतकों के साथ सपिण्डजनों के श्मशान तक जाने का विधान है। शवयात्रा में सम्मिलित लोगों का क्रम उनकी आयु के अनुसार होना चाहिये।

**ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजघन्याः।**, आश्वलायन गृह्यसूत्र, 4/2/9

प्राचीनकाल में स्त्रियाँ शव यात्रा के साथ श्मशान तक जाती थीं। प्राचीनकाल में शवयात्रा में 'अनुस्तरणी' अर्थात् एक गाय अथवा बकरे का बहुत महत्त्व था जिसकी बलि दी जाती थी अथवा उसे तीन बार चिता की प्रदक्षिणा कर मुक्त छोड़ दिया जाता था। शवयात्रा तीन विरामस्थानों पर रुकती थी तथा वहाँ विशेष विधि-विधान किये जाते थे। मार्ग में यमसूक्तों का पाठ किया जाता था।

श्मशानभूमि में पहुँचने पर गड्ढा खोदने के लिये स्थान खोजा जाता था। गृह्यसूत्रों में चिता तैयार करने के नियमों का विधान है। स्थान चुना हुआ होना चाहिये। आश्वलायन के अनुसार गड्ढा बारह अङ्गुल गहरा, पाँच बित्ता चौड़ा और इतना लम्बा होना चाहिये जितना हाथ ऊपर उठाने पर शव -

**आयतनमं खातमित्यर्थः।**, आश्वलायन गृह्यसूत्र, 4/2/10

'प्रयोग में आने वाले ईंधन का प्रकार, चिता का माप तथा निर्माण और अन्य संबद्ध नियम धार्मिक ग्रन्थों द्वारा निर्धारित हैं और शोकार्त सम्बन्धियों आदि के स्वेच्छाचार के लिये कोई अवकाश नहीं छोड़ा गया है।' (हिन्दू संस्कार, पृ. 317)

गृह्यसूत्रों में विधवा स्त्री के पति के साथ चिता पर लेटने तथा फिर उसे मृतक के छोटे भाई आदि द्वारा चिता से उतारने का वर्णन मिलता है -

**उत्तरत्तः पत्नीम्। तामुत्यापयेद् देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासो जरद्वासो वोदीर्घ्वनार्य्यभिजीवकोलमिति।** आश्वलायन गृह्यसूत्र, 4/2/16, 18

इसके पश्चात् मृतक के हाथ से मन्त्रोच्चरपूर्वक स्वर्णपिण्ड लेने की क्रिया की जाती है।

इसके पश्चात् दाहक्रिया की जाती है जो आहवनीय अग्नि में दी हुयी आहुति समझी जाती है और जो यज्ञिय आहुति के रूप में शव को स्वर्ग पहुँचाती है -

**अथ गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा प्रेतस्य दक्षिणं बाहुमन्वारभ्याहवनीये जुहोति।**, बोधायनगृह्यसूत्र, 1/1/16

चिता प्रदीप्त करने के अवसर पर अग्नि से प्रार्थना की जाती है। इसके पश्चात् मृतक के सभी अङ्गों को सम्बोधित किया जाता है यथा 'नेत्र सूर्य के निकट जायें, प्राणवायु वायुमण्डल

में विलीन हो, अपने पुण्यकर्मों के अनुरूप तू स्वर्ग, पृथ्वी या जलीय किसी भी लोक को, जो तेरे लिये कल्याणप्रद हो, जा, तुझे वहाँ भोजन प्राप्त हो और तू वहाँ सशरीर निवास कर' (हिन्दू संस्कार, पृ. 321)

सूत्रकाल में मृतक द्वारा घर में रखी गयी तीन (आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि) या पाँच अग्नियों से दाह-संस्कार होता था तथा यह भविष्यवाणी की जाती थी कि मृतक अगले जन्म में किस लोक में जायेगा –

**आहवनीयश्चेत् पूर्व प्राप्नुयात् स्वर्गलोक एनं प्रापदिति  
विद्याद्रात्स्यत्यसावमुत्रैवमयमस्मिन्निति पुत्रः।**

**गार्हपत्यश्चेत् पूर्व प्राप्नुयादन्तरिक्षलोक एनं प्रापदिति  
विद्याद्रात्स्यत्यसावमुत्रैवमयमस्मिन्निति पुत्रः।**

**दक्षिणाग्निश्चेत् पूर्व प्राप्नुयान्मनुष्यलोक एनं प्रापदिति  
विद्याद्रात्स्यत्यसावमुत्रैवमयमस्मिन्निति पुत्रः।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/4/2-5**

दाहसंस्कार के बाद शव के साथ स्मशान जाने वाले व्यक्ति बिना आसपास कुछ देखे लौट पड़ते हैं। तत्पश्चात् उदककर्म अर्थात् मृतक को जल देने की क्रिया सम्पन्न होती है। इसके अनेक प्रकार से करने का विधान है। कुछ आचार्यों के अनुसार मृतक की सातवीं या दसवीं पीढ़ी पर्यन्त सभी सम्बन्धी निकटतम नदी या तालाब में स्नान कर स्वयं को शुद्ध कर प्रजापति की स्तुति करते थे। स्नान करते समय केवल एक ही वस्त्र पहनने और अपना यज्ञोपवीत दाहिने कन्धे पर रखने का विधान है। शोकाकुल व्यक्ति को दक्षिण की ओर मुख कर जल में डुबकी लगाने तथा जल से अंजलि देने का विधान है –

**यत्रोदकमवहद्भवति तत्प्राप्य सकृदुन्मज्जैकाञ्जलिमुत्सृज्य तस्य गोत्रं नाम च  
गृहीत्वोत्तीर्यान्त्यानि वासांसि परिधाय...आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/4/10**

इसके पश्चात् शोकाकुल परिजनों को सान्त्वना देने का विधान है। स्नान के बाद सर्यास्त अथवा प्रथम नक्षत्र उगने तक गाँव नहीं लौटते। लौटने के क्रम में युवक आगे रहते हैं अन्य लोग पीछे।

**कनिष्ठप्रथमा कनिष्ठजघन्याः।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/4/12**

घर पहुँचने पर प्रवेश से पूर्व स्वयं को शुद्ध करने के लिये पत्थर-स्पर्श कर, नीम की पत्ती आदि से मुख शुद्ध करते हैं, विशेष लकड़ियों का धुँआ लेते हैं, फिर घर में प्रवेश करते हैं -

**गृहं प्राप्याश्मादीनुपस्मृशन्ति ततः प्रविशेरन्।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/4/13**

शवदाह के अनन्तर अशौचकाल पर विचार किया गया है। अशौच का काल और उसका क्षेत्र मृतक की आयु व जाति के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। गृह्यसूत्रों के अनुसार साधारणतः दस दिनतक अशौच रहता है -

**दशाहं सपिण्डेषु।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/4/18**

मृत्यु से होने वाला अशौच क्रमशः तीन दिन व दस दिन रहता है। बालक की मृत्यु पर अल्प दिनों का अशौच रहता है। दो वर्ष से अल्पायु में मृत्यु पर केवल मृतक के माता-पिता को एक या तीन रात्रि के लिये अशौच रहता है। सम्बन्धियों तथा मित्रों के लिये गृह्यसूत्रों में अशौच के

नियम का पालन ऐच्छिक है। अशौच अवधि के नियम दो प्रकार के हैं - निषेधात्मक व विध्यात्मक। निषेधात्मक नियमों के अन्तर्गत भोग-विलास आदि पर निषेध आता है विध्यात्मक के अन्तर्गत विविध प्रकार का संयम, भूमि पर शयन, एक समय भोजन आदि आते हैं।

शवदाह के पश्चात् जब अग्नि पूर्णरूपेण शान्त हो जाती है तब अस्थिचयन होता है। गृह्यसूत्रों में इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। आश्वालायन गृह्यसूत्र के अनुसार अस्थि संचयन मृत्यु के दसवें दिन करना चाहिये -

**सञ्चयनमूर्ध्वं दशम्याः कृष्णपक्षस्यायुजास्वेकनक्षत्रे, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/3/1**

बौधायन के अनुसार दाह से तीसरे, पाँचवे व सातवें दिन करना चाहिये। इसके अन्तर्गत भस्म पर दूध अथवा जल छिड़कर अस्थियों को उदुम्बर के डण्डे से हटाना चाहिये। राख इकट्ठा कर दक्षिण दिशा में फेंक देनी चाहिये। अलग-अलग गृह्यसूत्र अस्थिचयन का भिन्न-भिन्न विधान करते हैं। चयन के बाद अस्थिप्रक्षालन कर उन्हें एक पात्र में रखकर शमी के वृक्ष में लटका दिया जाता था -

**क्षीरोदकेन शमीशाखया त्रिःप्रसव्यमायतनं परिव्रजन् प्रोक्षति शीतिके शीतिकावतीति, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/5/3**

अश्वालायन स्त्री अस्थियों हेतु स्तनवती कुम्भ व पुरुष अस्थियों हेतु स्तनरहित कुम्भ का विधान करते हैं -

**अमंगले कुम्भे पुमांसं संचिन्युः। स्तनरहितः कुम्भः। अलक्षणायां कुम्भ्यां स्त्रियं सञ्चिन्युः। स्तनवती कुम्भी।, आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/5/2**

कालान्तर में अस्थिविसर्जन नदियों में होने लगा।

इसके पश्चात् शान्तिकर्म प्रारम्भ होता है। गृह्यसूत्रों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है -

**गुरुणाभिमृता अन्यतो वाऽपक्षीयमाणा अमावास्यायां शान्तिकर्म कुर्वीरन्। आश्वालायन गृह्यसूत्र, 4/6/1**

उनके अनुसार मृत्यु के नवम रात्रि के पश्चात् अगली प्रातः क्षौरकर्म तथा स्नान इत्यादि करना चाहिये। आश्वालायन इसके लिय पन्द्रहवें दिन का विधान करते हैं। इस अवसर पर दाहकर्म करने वाले व्यक्ति को अग्नि में चार आहुतियाँ देनी चाहिये और सम्बन्धियों को खड़े होकर एक लाल बैल को स्पर्श करना चाहिये। श्मशान भूमि पर कुछ स्मारक के निर्माणकार्य तथा बीजवपन का उल्लेख मिलता है।

और्ध्वदैहिक क्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण पिण्डदान-क्रिया है। यह क्रिया अशौच की अवधि में की जाती है। इसके अन्तर्गत अभी मृतक आत्मा को उपस्थित माना जाता है तथा उसके सम्बन्धियों द्वारा उसके प्रति भोजन आदि प्रस्तुत किया जाता है। पिण्डदान हेतु सामान्यतः पितरों को आमन्त्रित किया जाता है। पिण्डदान विध्यात्मक नियम क अन्तर्गत आता है। इसमें मृत्यु के पश्चात् प्रथम दिन मृतक के लिये पिण्डदान करना चाहिये। इसमें चावल के आटे का पिण्ड बनाया जाता है। चावल के आटे के गोले को पिण्ड इसीलिये कहा जाता है क्योंकि उसे पिण्ड अर्थात् शरीर के अवयवों का पूरक माना जाता है -

पिण्डमवयवपूरकं दत्त्वा, पारस्करगृह्यसूत्र, 3/10/27-28 पर जयराम

‘उस पिण्ड के साथ उसकी शुद्धि हेतु जल भी गिराया जाता था तथा प्रेत का नाम लेकर पुकारा जाता था। उसके लिये दूध और जल भी गिराया जाता था तथा प्रेत का नाम लेकर पुकारा जाता था। उसके लिये दूध और जल उन्मुक्त वाय-मण्डल में इन शब्दों के साथ रख दिये जाते थे, 'यहाँ स्नान करो'। उसे सुगन्धित पदार्थ और पेय तथा यमलोक के अन्धकारमय मार्ग को आलोकित करने के लिये दीपक भी दिये जाते थे। (आश्वालायनगृह्यसूत्र, 4/5) (हिन्दू संस्कार, पृ. 336)

इसके पश्चात् ग्यारहवें दिन ब्राह्मणों को भोजन करवाने का विधान है। बाद के ग्रन्थ दाह से लेकर बारहवें दिन तक प्रत्येक दिन विशेष प्रयोजन हेतु विशेष प्रकार के पिण्डदान का विधान करते हैं। दसवें दिन मृतक के जीवित सम्बन्धियों के केश, श्मश्रु और नख काटे जाते हैं और मृतक की प्रेत-दशा के निवारण हेतु मृतक और यम को पिण्डदान किया जाता है। इसी दिन वृषोत्सर्ग की क्रिया सम्पन्न होती है जिसमें एक साँड और एक गाय को खुला छोड़ना होता है-

**स्वर्ग्यः पशव्यः पुत्र्यो धन्यो यशस्य आयुष्यः। औपासनमरण्यं हत्वा वितानं साधयित्वा रौद्रं पशुमालभेत साण्डम्। गौर्वाशब्दात्, पारस्करगृह्यसूत्र, 3/9**

इसके पश्चात् ग्यारह महापात्रों के भोज के साथ यह विधि समाप्त होती थी। मृतक के भावी जीवन के सुख हेतु एक वर्ष के लिये महापात्र की भोजन की व्यवस्था की जाती है।

बारहवें दिन, तीनों पक्षों के अन्त में या वर्ष की समाप्ति पर प्रेत को पितरों से संयुक्त करने की क्रिया सम्पन्न होती है जिसे 'सपिण्डीकरण' कहते हैं। सपिण्डीकरण हेतु विहित तिथियों के आरम्भ में षोडश श्राद्ध किये जाते हैं।

अन्त्येष्टिक्रिया के अन्तर्गत कुछ विशेष क्रिया का भी विधान है। एक विशेष अन्त्येष्टि क्रिया 'अहिताग्नि' अर्थात् तीन अग्नि रखने वाले गृहस्थ से सम्बन्धित है। बौधायन के अनुसार ऐसे व्यक्ति की मृत्यु के पूर्व और पश्चात् होम करना चाहिये तथा उसके यज्ञिय पात्रों का उसकी कुश से निर्मित प्रतिकृति के साथ एक पृथक् चिता पर दाह करना चाहिये। आश्वालायन साधारण अन्त्येष्टि में मृतक के साथ ही यज्ञिय पात्रों के दाह का विधान करते हैं।

शिशुओं के अन्त्येष्टि का विशेष विधान है। माना जाता है कि शिशुओं का कोमल शरीर भीषण ज्वालाओं हेतु उपयुक्त नहीं होता। शिशु का निष्पाप जीवन कुल पर अधिक अशौच भी नहीं आरोपित करता इसलिये प्रौढ़ों की भाँति अशुद्ध भी उसमें अपेक्षित नहीं है। अतः बौधायन के अनुसार अनुपनीत बालकों व अविवाहित कन्याओं का पितृमेध नहीं करना चाहिये -

**यथा एतन्न प्राक्चौलात् प्रमीतानाम् दहनं विद्यते चानुपनीताना कन्यानां पितृमेध इत्युक्तम्।**

पारस्कर के अनुसार दो वर्ष से कम आयु के शिशुओं का दाह न करके निखात करना चाहिये।

गर्भवती स्त्री के दाहसंस्कार का भी विशेष नियम है। बौधायन के अनुसार गर्भवती स्त्री के शव को श्मशान-भूमि में ले जाकर शिशु को बचाकर अष्टकाधेनु, तिलधेनु, भूमिधेनु के अतिरिक्त दान के साथ उसका दाहसंस्कार विधिवत् करना चाहिये। अन्य सभी विधि-विधान सामान्य और्ध्वदैहिक क्रिया के समान ही सम्पन्न करना चाहिये।

परिव्राजक व सन्यासियों की अन्त्येष्टि क्रिया का भी विशिष्ट विधान है। बौधायन के अनुसार परिव्राजक की अन्त्येष्टि क्रिया में शव को गड्ढे में लेटाकर, उसके ऊपर भिक्षापात्र रखकर, जल से अभिसिञ्चित कर, गड्ढे को मिट्टी से ढँक देना चाहिये तथा शृगाल, कुत्ते आदि से रक्षा हेतु वह एक स्तूप का निर्माण कर देना चाहिये। परिव्राजकों के प्रति इस कर्त्तव्य का पालन बहुत पुण्यदायी माना जाता है। सन्यासियों हेतु दाह के बाद के कृत्य निषिद्ध हैं।

सुदूर प्रदेश में मरने वाले प्रवासियों हेतु भिन्न विधान है। सर्वप्रथम बौधायन ने ही इसका विशद वर्णन किया है कि मृत्यु की सूचना पाते ही सम्बन्धियों को यदि सम्भव है तो शव अन्यथा अस्थियों को अन्त्येष्टि के लिये लाना चाहिये। यदि केवल अस्थियाँ ही मिलें तो विभिन्न अवयवों से कुल तैंतीस अस्थियों का चयन करना चाहिये क्योंकि शरीर तैंतीस अवयवों से मिलकर बना होता है। अस्थियाँ न उपलब्ध होने पर केवल दिशा का ज्ञान होता था, अतः उस दिशा से प्रेत को पुकारकर मृगचर्म पर उसका एक पुतला बनाकर उसर यज्ञिय पात्र रखकर अग्निसंस्कार किया जाता था।

दुर्घटना आदि में अकाल मृत्यु होने पर बौधायन के अनुसार जिनकी मृत्यु शस्त्र के घाव, विषप्रयोग, फाँसी, जल में डूबने, पर्वत व वृक्ष आदि से गिरने से होती है, वे अन्त्येष्टि के योग्य नहीं हैं। गौतम धर्मसूत्र का मत है कि इच्छा होने पर उनके सम्बन्धी उनका उदक कर्म आदि कर सकते हैं। स्मृतिसाहित्य इस प्रकार की मृत्यु पर किसी प्रकार के शौच कर्म का निषेध करता है। स्मृतियाँ पतित व्यक्तियों के अन्त्येष्टि का भी निषेध करती हैं।

#### 4.6.4 और्ध्वदैहिक क्रिया एवम् अन्त्येष्टि संस्कार का महत्त्व

और्ध्वदैहिक क्रिया और अन्त्येष्टि संस्कार का भारतीय जीवनपद्धति में बहुत महत्त्व है। यह संस्कार भारतीय दर्शन के सर्वाधिक सशक्त सिद्धान्त 'ईश्वर अंश व अविनाशी' का परिचायक है। और्ध्वदैहिक क्रिया द्वारा मृतक के परलोक को सुधारने एवम् उसकी सद्गति हेतु कामना की जाती है। साथ ही यह शकाकुल परिजनों के लिये बहुत बड़ा मानसिक व आत्मिक सम्बल भी होता है। अन्त्येष्टि संस्कार के अन्तर्गत किये जाने वाले विभिन्न विधि-विधान प्रियजनों के विछोह में शोकसंतप्त हृदय की वेदना को कम करते हैं। यह एक प्रकार से मनवैज्ञानिक उपचार है जिससे व्यक्ति को किस प्रिय के जाने का सन्तोष होता है और वह शोक को पार कर पाता है, दुःख को सहन कर पाता है। और्ध्वदैहिक क्रिया के विधि-विधानों में प्रकृति व स्रष्टा के प्रति एक समर्पण व कृतज्ञ भाव भी दिखायी पड़ता है।

#### 4.7 सारांश

इसप्रकार भारतीय जीवनपद्धति में जीवन के प्रत्येक मोड़ पर जीवन के दिशा देने व उसके व्यवस्थापन का प्रावधान है जो कि संस्कारों के रूप में व्यवस्थित व नियमित है। संस्कार भारतीय जीवन के आचारसूत्र हैं। जीवन के विकास के प्रत्येक बिन्दु पर यहाँ विशिष्ट संस्कारों का विधान है। केशान्त संस्कार इस बात का बोधक है कि अब तरुणाई से व्यक्ति ने युवावस्था में प्रवेश किया है तथा अब उसने पारिवारिक व सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वहन की योग्यता विकसित कर ली है। समावर्तन संस्कार व्यक्ति के शिक्षा की पूर्णता का संस्कार है। इससे यह ज्ञात होता है कि भारतीय समाज शिक्षा को लेकर किस प्रकार चैतन्य रहा है। और्ध्वदैहिक क्रिया व अन्त्येष्टि संस्कार द्वारा देह को न केवल अग्नि को समर्पित कर पञ्चतत्त्व में विलीन किया जाता है अपितु इससे पर्यावरण की शुद्धता भी बनी रहती है तथा यह भावना भी रहती है



कि दाहसंस्कार द्वारा आत्मा को सद्गति मिली। और्ध्वदैहिक क्रिया की विधियाँ मानवमन को विश्रान्ति देती हैं साथ ही लोककल्याणकारी भी हैं। इस अवसर पर किया जाने वाला वृषोत्सर्ग गौवंश की अभिवृद्धि व समाज की समृद्धि का कारक रहा है। इस प्रकार संस्कार जीवन के वे महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं जिनका उद्देश्य व्यक्तित्व का परिष्कार कर जीवन को समृद्ध, सजग, चेतन व आत्मबोध से परिपूर्ण बनाना है।

## 4.8 शब्दावली

- 1) और्ध्वदैहिक-
- 2) श्मश्रु- दाढ़ी-मूँछ
- 3) उपानह – चप्पल
- 4) उष्णीष- पगड़ी
- 5) उदुम्बर-गूलरा
- 6) आहवनीय अग्नि- यज्ञ की अग्नि
- 7) गार्हपत्य अग्नि- रसोई की अग्नि
- 8) दक्षिणाग्नि – दक्षिण में रखी जाने वाली अग्नि
- 9) अवांछित- अनचाहा
- 10) एकादशाह – दाह-संस्कार के बाद अथवा मृत्यु के बाद ग्यारहवें दिन की श्राद्ध।
- 11) श्मशानचित्ति- शव का प्रक्षालन तथा उसे चिता पर रखना।

## 4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अल्लेकर, अनन्त सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षापद्धति, सुविचार प्रकाशन मंडल लिमिटेड, नागपूर, 1935
2. आश्वालायनगृह्यसूत्रम्, सं. पण्डितकुलपति, श्री जीवानन्द विद्यासागर, सरस्वतीयन्त्रे, 1883ई.
3. आश्वालायनगृह्यसूत्रम्, टी. गणपति शास्त्री, हरिदत्ताचार्य मिश्र, महामहिमश्रीमूलकरामवर्मकुलशेखरमहाराजशासनेन राजकीयमुद्रणयन्त्रालये तदध्यक्षेण मुद्रयित्वा प्रकाशितम्, 1923
4. ऋग्वेदसंहिता, वैदिक संशोधन मंडल, पूना, 1941
5. गोभिलगृह्यसूत्रम्, टीका.पं सत्यव्रत सामशास्त्री, मथुरापुरस्थ शास्त्रप्रकाश कार्यालये, 1906ई.
6. तैत्तिरीयब्राह्मणम्, सायणभाष्यसहितम्, आर. शाम. शास्त्री, गवर्नमेण्ट ब्रांच प्रेस, मैसूर 1921
7. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार- सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957
8. पाण्डेय, विजयशंकर, वैदिकसूक्तसंकलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001

9. पारस्करगृह्यसूत्रम्, सुधाकर मालवीय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
10. मनुस्मृति, सं. पं. हरिगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस।
11. शतपथ-ब्राह्मण, शांकर भाष्य, अनुवादक- माधवानन्द, अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी, संवत्-1994-97
12. शास्त्री, हरिदत्त, ऋक्सूक्तसङ्ग्रह, रतिराम शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
13. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी, 1985
14. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, यजुर्वेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
15. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, सामवेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
16. वाक्यपदीयम्, प्रथमो भागः, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2016
17. वैदिक सूक्त सङ्ग्रह, गीताप्रेस, गोरखपुर।
18. The Bodhayana Grhyasutra, Ed. R Shama Sastri, Meharchand Lachhmandas, New Delhi, 1982, reprint from 1920
19. The Varaha-Grihyasutra, Ed Raghu Vira, Meharchand Lachhmandas, New Delhi, 1982

---

#### 4.10 बोध प्रश्नोत्तर

---

---

## इकाई 5 संस्कारों का वैज्ञानिक पक्ष

---

### इकाई की रूपरेखा

- 5.1 उद्देश्य
- 5.2 प्रस्तावना
- 5.3 संस्कार- सामान्य परिचय
  - 5.3.1 संस्कारों की संख्या
  - 5.3.2 संस्कारों का प्रयोजन
  - 5.3.3 भारतीय जीवनपद्धति एवम् संस्कार
  - 5.3.3 भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कार
  - 5.3.4 भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कारों का महत्त्व
- 5.4 विवाह संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.5 गर्भाधान संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.6 पुंसवन संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.7 सीमन्तोन्नयन संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.8 जातकर्म संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.9 नामकरण संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.10 निष्क्रमण संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.11 चूडाकरण संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.12 उपनयन संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.13 केशान्त संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.14 समावर्त्तन संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.15 और्ध्वदैहिक क्रिया व अन्त्येष्टि संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष
- 5.16 सारांश
- 5.17 शब्दावली
- 5.18 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 5.19 बोध प्रश्नोत्तर

---

### 5.1 उद्देश्य

---

- प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को विभिन्न संस्कारों में निहित वैज्ञानिकता से अवगत करवाना है।
- इसके अध्ययन से विद्यार्थी संस्कारों के विधि-विधानों के निहतार्थों से परिचित हो सकेंगे।

ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

- इसके माध्यम से विद्यार्थी संस्कारों के माध्यम से भारतीय ज्ञान परम्परा द्वारा समाज में प्रवर्तित वैज्ञानिक सन्दर्भों को जान सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थियों को भारतीय समाज में विभिन्न संस्कारों के महत्त्व एवम् उनके विधि-विधानों के वैज्ञानिक पक्ष का सूक्ष्मता से ज्ञान भी होगा।
- इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी यह भी जान सकेंगे कि किस प्रकार भारतीय परम्परा प्रतिपल जीव के संस्कार पर ध्यान देती है और यह सुनिश्चित करती है कि जीवन का संतुलन बना रहे तथा व्यक्ति उत्तरोत्तर जीवन में सर्वाङ्गीण प्रगति करें।

## 5.2 प्रस्तावना

‘संस्कार’ केवल शब्द अथवा अनुष्ठान नहीं है अपितु इसके व्यापक व गहन दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा सामाजिक लक्ष्य हैं। संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति की आध्यात्मिक व दार्शनिक चेतना के विकास द्वारा उसके पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रजीवन को समृद्ध बनाना है। कुछ ऐसे आधारभूत मूल्य हैं जिनकी उपस्थिति हर संस्कार में है जैसे कृतज्ञता, श्रद्धा, दान और समाज की सहभागिता। ये सब वे तत्त्व हैं जो व्यक्ति के मानस को उदात्त बनाते हैं तथा उसमें सामाजिक चेतना भरते हैं। ये व्यक्ति के उत्तरदायित्वबोध हेतु अपरिहार्य क्रियाकलाप हैं।

संस्कार की इस महत्ता को ध्यान में रखते हुये भारतीय जीवनपद्धति में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सोलह संस्कारों को स्थान दिया गया है। ये समस्त संस्कार ऋषियों के गहन व दीर्घकालीन चिन्तन तथा शोध का परिणाम हैं। सर्वप्रथम जीवन को चार आश्रमों के अन्तर्गत देखना ही भारतीय जीवनपद्धति की वैज्ञानिकता सबसे बड़ा प्रमाण है। आज जब हम आधुनिक वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं जहाँ विज्ञान के अनुसन्धान उन्नति पर हैं और चिकित्सीय क्षेत्र भी पर्याप्त समृद्ध है तब हमें संस्कारों के महत्त्व पर आधुनिक विज्ञान के आलोक में ध्यान देने पर यह स्पष्ट होता है कि सभी संस्कार जीवन के उन बिन्दुओं पर करने का विधान है जो बहुत संवेदनशील और गम्भीर हैं तथा जो व्यक्ति के जीवन की दिशा क्या होगी यह बताने में सहायक हैं।

## 5.3 संस्कार- सामान्य परिचय

संस्कार व्यक्ति के जीवन की आधारशिला हैं। इसी के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिष्कार होता है तथा वह समाज की मुख्यधारा में सम्यक् रूप से जीवनयापन एवम् अपने अधिकारों की रक्षा करते हुये कर्तव्यपालन के योग्य बनता है। संस्कार के माध्यम से मानव एक पूर्ण विकसित व्यक्ति बनता है। संस्कार केवल अनुष्ठान नहीं है अपितु उस अनुष्ठान में निहित विभिन्न सांकेतिक अर्थ व्यक्ति के जीवन को अर्थपूर्ण बनाते हैं।

संस्कार शब्द ‘सम्’ उपसर्गपूर्वक ‘कृञ्’ धातु में ‘घञ्’ प्रत्यय (सम्+कृञ्+घञ्) लगाकर बनता है। इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- संस्क्रियते अनेन, अर्थात् जिससे कोई वस्तु अथवा व्यक्ति संस्कृत, परिष्कृत, परिमार्जित अथवा शुद्ध किया जा सके वह ‘संस्कार’ है।

यह जीवन सामान्य नहीं अपितु विशिष्ट है अतः इसमें ‘मनुर्भव’ की कल्पना साकार होनी चाहिये। एक स्वस्थ, सशक्त व चिन्तनील सन्तान का जन्म एवम् उसका व्यक्तित्वनिर्माण होना चाहिये। इस आधारभूत बात को हमारे पूर्वज भलीभाँति जानते थे अतः उन्होंने संस्कारों की

व्यवस्था की जिससे परिवार व समाज के सभी व्यक्तियों का उत्तरदायित्व तय हो सके साथ ही उन्हें उत्तरदायित्वबोध भी हो सके।

संस्कार सामाजिक रूप से व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से लेकर वैश्विक जीवन तथा पूरी प्रकृति पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। इसके विधि-विधान व्यक्ति के अस्तित्व को सार्थक बनाते हैं। संस्कार से व्यक्ति में विवेकबुद्धि का स्फुरण व जागरण होता है। संस्कार जीवन के संयमन व नियमन की ऐसी व्यवस्था है जो विचलन व विकार की संभावना को क्षीण करने में सहायक है। संस्कारों का प्रधानप्रयोजन जीवन से अशुभ व अवांछित प्रभावों का निवारण कर, दोषों को दूर कर, गुणों का प्रस्फुटन व संवर्धन है।

संस्कारों की प्रथमतः विस्तृत व गहन रूपरेखा सर्वप्रथम गृह्यसूत्रों में 'गृह्ययज्ञ' के रूप में प्राप्त होती है। वहाँ वर्णित संस्कारों की संख्या बारह से लेकर अठारह तक है। वर्तमान में संस्कारों की संख्या सामान्यतः सोलह मानी गयी है-गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह एवम् अन्त्येष्टि।

#### 5.4 विवाह संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

गृहस्थाश्रम जीवन का सबसे महत्वपूर्ण सोपान है। इसी से सृष्टिप्रक्रिया संचालित है तथा इसी पर समाज व परिवार टिका है। इसमें प्रवेश विवाह संस्कार के माध्यम से होता है। विवाह संस्कार द्वारा ही अन्य संस्कारों का मार्ग प्रशस्त होता है। यह संस्कारों में सर्वस्वीकृत व प्राचीन संस्कार है जिसका आज भी प्रवाह बना हुआ है। विवाह संस्कार का वर्णन ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होता है। इसका उद्देश्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सन्तानोत्पत्ति करना है।

वेदों में स्थायी व नियमित विवाह का ही स्थान है। हिन्दूपरम्परा में बताये गये विवाह के आठ प्रकारों- ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच, में ब्राह्म विवाह सबसे प्रचलित और प्रशस्त है।

विवाह के सन्दर्भ में गृह्यसूत्रों में गोत्र का निषेध नहीं है। किन्तु धर्मसूत्रों के समय से ही सगोत्र तथा सपिण्ड विवाह निषिद्ध हो गये थे। (हिन्दू संस्कार, पृ. 224) आज विज्ञान भी एक ही कुल और गोत्र में विवाह का निषेध करता है क्योंकि इससे विभिन्न प्रकार के आनुवांशिक रोगों व जन्मजात विकारों के होने की सम्भावना रहती है।<sup>1</sup> गोत्र और कुल का निषेध भारतीय विवाह की अत्यन्त वैज्ञानिक व्यवस्था है जो वैदिक काल से ही समाज में प्रचलित रही है।

विवाह ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में वर्णित सोम-सूर्या के विवाह के मन्त्र तथा गृह्यसूत्रों द्वारा निर्दिष्ट विधि-विधानों द्वारा होता है। गृह्यसूत्रों में वैदिक काल के वैवाहिक विधि-विधान वर्णित हैं जिनमें आज भी मधुपर्क, लाजाहोम, अशमारोहण, गाथा-गान, मूर्धाभिषेक, हृदयस्पर्श, सूर्यदर्शन तथा सप्तपदी बहुत महत्वपूर्ण है।

भारतीय विवाह पद्धति अत्यन्त वैज्ञानिक है, जिसमें परिवार व समाज के समन्वय सहित प्रकृति के सभी प्रधान तत्त्वों के प्रति कृतज्ञता व श्रद्धा का भाव निहित है। विवाह-संस्कार के समस्त क्रियाकलाप एक अत्यन्त व्यवस्थित प्रविधि हैं, जिसके माध्यम से नवदम्पती गृहस्थाश्रम में

<sup>1</sup><https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3419292/>

प्रवेश कर प्रतिष्ठित होते हैं। विवाह-संस्कार की प्रक्रिया पारिवारिक, सामाजिक व धार्मिक अनुमोदन भी है, जिसके कारण वैवाहिक सम्बन्ध को स्थिरता व दृढ़ता प्राप्त होती है।

विवाह संस्कार के अन्तर्गत पितरों व देवताओं का आवाहन भी श्रद्धा व कृतज्ञता की अभिव्यक्ति है। वरयात्रा अर्थात् बारात में कुल व समाज के व्यक्तियों की सहभागिता वह साक्षीभाव है जिससे गृहस्थाश्रम का आधार दृढ़ होता है। वर के आगमन पर श्वसुर द्वारा वर को मधुपर्क देना एक विशिष्ट कार्य है जिसमें शतायु होने का भाव निहित है। मधुपर्क में मधु, घृत, दधि का मिश्रण होता है। इन तीनों का बहुत औषधीय महत्त्व है। मधुपर्क कांसे के पात्र में दिये जाने की व्यवस्था है कांसा भी स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्तम धातु है। यह बुद्धि व आयु को बढ़ाने वाली है। इसीलिये प्रत्येक हिन्दू संस्कार में कांसे के प्रयोग का विधान है। भारतीय परम्परा में विवाह-संस्कार विषय-भोग का साधन नहीं अपितु एक बड़ा उत्तरदायित्व है।

## 5.5 गर्भाधान संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

गर्भाधान संस्कार का सम्बन्ध गर्भधारण से है। भारतीय जीवनपद्धति में गर्भधारण करना एवम् जीव का सूत्रपात होना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। जिस कर्म के द्वारा गर्भ धारण किया जाता है उसे गर्भाधान संस्कार कहते हैं। जन्म लेने वाला शिशु दोषरहित, बुद्धिमान् व प्रखर हो सके इसलिये गर्भाधान संस्कार का विधान है।

गर्भाधान सम्बन्धी विधानों का सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप में दर्शन गृह्यसूत्रों में होता है। गर्भाधान गर्भ का संस्कार था इसलिये इसे प्रत्येक गर्भधारण के पूर्व सम्पन्न करने का विधान है। कुछ विद्वान् क्षेत्र-संस्कार मानकर केवल प्रथम गर्भधारण से पूर्व सम्पन्न करने का विधान करते हैं।

गर्भाधान संस्कार सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक व वैज्ञानिक रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण है। सन्तान को जन्म देना मानव का एक साधारण कर्म होते हुये भी विशिष्ट है। गर्भ में जीव की सृष्टि एक विशेष घटना है। उस सृष्टि हेतु सद्संकल्प आवश्यक है। उसी सद्संकल्प का प्रवर्तन यह संस्कार है। संकल्प के साथ गर्भधारण से वर्तमान काल जैसे अवांछित गर्भधारण व उसके लिये किये जाने गर्भपात जैसे पापों की सम्भावना नहीं रहती और न ही उसके कारण विभिन्न सामाजिक समस्याओं का जन्म होता है। यह संस्कार इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें सन्तान की उत्पत्ति हेतु शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आर्थिक स्तर पर तैयार होकर गर्भ का आधान करने का विचार निहित है। जिससे कि भावी सन्तान के पोषण, उसके सम्यक् लालन-पालन, समाज में उसके स्थान व उसके जीवन के दिशा-निर्धारण में बहुत सहायता मिलती है। अपरिपक्व अवस्था व अन्यमनस्कता की स्थिति में गर्भधारण से माता व भ्रूण दोनों पर बहुत विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा गर्भजन्य विकार होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

## 5.6 पुंसवन संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

गर्भाधान संस्कार द्वारा अस्तित्व में आया जीव जब गर्भ में भ्रूण के रूप में पल रहा होता है तब उसको पोषण प्रदान करने तथा उसकी रक्षा हेतु किया जाने वाला संस्कार पुंसवन संस्कार है। पुंसवन का शाब्दिक अर्थ है वह संस्कार जिससे पुं अर्थात् पुमान्(पुरुष) सन्तति का जन्म हो। यहाँ यह ध्यातव्य है कि वैदिक काल में 'पुरुष' शब्द लिंग विशेष का वाची न होकर साधारणतः दोनों लिंगों का वाचक था।

वैदिक काल में इस संस्कार की विधि का संकेत मिलता है जिसके अन्तर्गत गर्भवती महिला को कुछ औषधियाँ भी दी जाती थीं। पुंसवन संस्कार गर्भधारण के तीसरे अथवा चौथे मास तथा उसके पश्चात् सम्पन्न किया जाता था। सामान्यतः इस संस्कार का समय द्वितीय से अष्टम मास तक माना जाता है। अधिकांश विद्वान् गर्भधारण के तीसरे माह में इसे करना अधिक उत्तम मानते हैं। तीसरे से अष्टम मास तक भ्रूण का पूर्ण विकास हो जाता है। इसी विकास-अवधि में पुंसवन का विधान है।

पुंसवन गर्भ की रक्षा व स्वस्थ सन्तान के जन्म की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि हम इस संस्कार के वैज्ञानिक पक्ष पर स्वास्थ्य व आयुर्वेद की दृष्टि से विचार करें तो पायेंगे कि यह संस्कार तृतीय से अष्टम माह तक करने का विधान है जो कि गर्भ के विकास व गर्भरक्षा की दृष्टि से बहुत संवेदनशील समय होता है तथा अधिकांश गर्भपात तथा गर्भ में आने वाले विकार इसी समय उत्पन्न होते हैं। अतः ऐसे समय में माता व गर्भ का पुष्ट होना तथा प्रसन्न होना बहुत आवश्यक है। इस संस्कार में गर्भवती स्त्री के दाहिने नासारन्ध्र में वट की छाल के रस, सहदेवी व विश्वदेवी आदि औषधियाँ डाली जाती हैं, जिनका आयुर्वेद में अत्यधिक महात्म्य है। सुश्रुत ने वटवृक्ष के गुणों का बखान करत हुये कहा है कि उससे गर्भकालीन समस्त कष्ट जैसे तिल्ली का बढ़ना, दाह आदि दूर हो जाते हैं। वट को पोषक भी कहा गया है। इन औषधियों के प्रयोग से गर्भ पुष्ट होता था।

## 5.7 सीमन्तोन्नयन संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

सीमन्तोन्नयन संस्कार में पति द्वारा अपनी गर्भवती पत्नी के केशों को संवारकर उन्हें ऊपर की ओर उठाया जाता है। इसके सन्दर्भ में मान्यता यह थी कि इससे अमंगलकारी शक्तियाँ जो गर्भ को नष्ट कर सकती हैं, वे गर्भ में ही नष्ट हो जाती हैं और सन्तति को दीर्घायुष्य मिलता है। इस संस्कार से गर्भवती स्त्री का मनःप्रसादन भी होता है। सीमन्तोन्नयन संस्कार का मनोवैज्ञानिक लक्ष्य जन्म लेने वाले शिशु के शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी सुनिश्चित करना है क्योंकि गर्भावस्था के चतुर्थ व पञ्चम मास में शिशु के मानसिक शक्तियों का विकास होता है –

**चतुर्थे व्यक्तताङ्गानां गृह्यसूत्रों, चतनायाश्च पञ्चमे॥ (अष्टाङ्गहृदयम्, 2/1/57)**

इस संस्कार के दिन गर्भवती स्त्री के उपवास का विधान है। इसके अन्तर्गत सीमन्तों अर्थात् केशों को संवारने के बाद पति द्वारा वटे हुये सूत्रों के धागों के साथ उदुम्बर की शाखा अथवा जौ के पौधे को पत्नी के गले के चारों ओर बाँधने का विधान है। उदुम्बर एक पोषक वृक्ष है। शतपथब्राह्मण में कहा गया है कि सब वृक्षों ने देवों का साथ छोड़ दिया पर उदुम्बर ने नहीं छोड़ा।<sup>2</sup> इसके उतना फल आता है, जितना कि सभी वनस्पतियों में मिलाकर है। इसमें सब वनस्पतियों की ऊर्जा और रस है। यह सदा आर्द्र और सर्वदा दूध से भरा रहता है।<sup>3</sup> जौ भारत के प्रारम्भिक अन्न में से एक है। प्रमुख अवसरों एवम् संस्कारों में जौ के प्रयोग का विधान है। अपनी क्षारीय प्रकृति के कारण यह उत्तम औषधि भी है। गर्भवती के गले में उदुम्बर की शाखा व जौ के पौधों को बाँधने का प्रतीकात्मक अर्थ उसके बल व तेज को प्रदीप्त कर उसपर आने

<sup>2</sup>प्राचीनभारतमेंरसायनकाविकास, पृ. 39

<sup>3</sup>प्राचीनभारतमेंरसायनकाविकास, पृ. 39

वाली विपत्तियों का परिहार करना है। उदुम्बर, सदाहरित, आर्द्र एवम् दुग्धवान् वृक्ष है अतः यह धन-धान्य, प्रसन्नता, स्वास्थ्य व पोषण का भी प्रतीक है।

यह संस्कार गर्भवती स्त्री तथा उसके गर्भ दोनों की रक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे गर्भवती स्त्री का आत्मबल तथा मनोबल बढ़ता है और वह प्रसन्न व स्वस्थ रहती है। स्वास्थ्य, प्रसन्नता व आत्मबल सम्यक् व सुखपूर्वक प्रसव तथा माता व शिशु की रक्षा हेतु आवश्यक है। सीमन्तोन्नयन संस्कार के माध्यम से स्त्री को परिवार व समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है कि वह एक महत्त्वपूर्ण कार्य करने जा रही है। अतः वह प्रसन्न रहती है जिससे गर्भकाल के अनेक बाधाओं का स्वतः शमन होता है। सीमन्तोन्नयन संस्कार का बहुत ही मनोवैज्ञानिक प्रभाव है।

## 5.8 जातकर्म संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

जातकर्म संस्कार शिशु के जन्म के बाद होने वाला प्रथम संस्कार है। इसके अन्तर्गत प्रसव के समय तथा प्रसव के उपरान्त माता व शिशु के स्वास्थ्य व जीवन की रक्षा पर बहुत ध्यान दिया जाता है।

इसमें शिशु के जन्म के पूर्व ही सूतिका-भवन का शुभतिथि, नक्षत्र, वार देखकर निर्माण किया जाता है। सूतिका-भवन को नैऋत्य दिशा व समतल भूमि पर बनाने का विधान है, जिसका द्वार पूर्व अथवा उत्तर की ओर होना चाहिये। वास्तुशास्त्र के अनुसार नैऋत्य दिशा में उत्तर-पूर्व से आने वाली शुभ ऊर्जा का सङ्ग्रहण होता है और नकारात्मक ऊर्जा घर में नहीं प्रवेश करने पाती। इस दिशा में खिड़की, दरवाजों आदि का निर्माण भी निषिद्ध है अतः यहाँ सूतिकागृह बनाने से किसी भी प्रकार के बाह्य वातावरणीय व्यवधान तथा जीव-जन्तुओं का खतरा भी नहीं रहता। पूर्व, उत्तर व पश्चिम से आने वाली वायु का सीधा प्रभाव भी नैऋत्य कोण पर नहीं होता। इस तरह माता व शिशु की सुरक्षा की उत्तम व्यवस्था बनती है। प्रसव के बाद माता व शिशु को धुयें से पवित्र करने, धूनी देने के लिये सूतिका-भवन में अग्नि जलाने का भी विधान है। जिसे सूतिकाग्नि कहते हैं तथा जन्म के दसवें दिन जब शुद्धि होती है तब उसे शान्त कर दिया जाता है। अग्नि सबसे बड़ा शोधक है। आयुर्वेद में विभिन्न औषधियों आदि के धुयें को रोगनाशक माना गया है। समुचित मात्रा में धुँआ कीटाणुओं का भी नाश करता है। धूम से सिरदर्द, जुकाम, नेत्रपीड़ा, हिक्का, श्वास, गलग्रह, दन्तदौर्बल्य, कान, नाक अथवा नेत्र के दोष, दन्तशूल, गलशुण्डी, उपजिह्विका, केशपतन आदि रोगों का शमन होता है।<sup>4</sup>

जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत मुख्यरूप से मेधाजनन, आयुष्य तथा बल प्राप्ति हेतु प्रार्थना व अनुष्ठान किये जाते हैं। 'मेधाजनन' में पिता मन्त्रोच्चारपूर्वक अपनी चौथी अङ्गुली और एक सोने की शलाका से शिशु को मधु और घृत चटाता है। मेधाजनन से शिशु का बौद्धिक विकास सुनिश्चित होता है। मधु और घृत बुद्धि और आयु को बढ़ाने वाला रसायन है। इसके प्राशन से शिशु की रोगों से रक्षा होती है तथा वह मेधावी बनता है। वाग्भट ने घृत-मधु और स्वर्ण भस्म चटाने की बात कही है-

**लिह्यान्मधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽथवा। (अष्टाङ्गहृदयम्, 4/1/9)**

मेधाजनन, आयुष्य तथा बल इन तीनों क्रियाओं के पश्चात् पिता सन्तान को जन्म देने वाली



माता की स्तुति करता है। इसके बाद शिशु की नाल माता से पृथक् की जाती है तथा माता द्वारा प्रथम बार स्तनपान करवाया जाता है। इस संस्कार में उस भूमि तथा उस माता के प्रति कृतज्ञताज्ञापन का भी विधान है जो सुरक्षित प्रसव का आधार व सन्तति की जननी है। यहाँ माता व भूमि के प्रति कृतज्ञताज्ञापन भारत के आध्यात्मिक चिन्तनधारा के अनुरूप ही है।

सूतिकागृह के द्वार पर प्रज्वलित अग्नि में प्रतिदिन सायं सरसों के बीज आदि की आहुति देकर शिशुओं को होने वाले रोगों और विकारों को दूर रहने की प्रार्थना की जाती है। अग्नि में सरसों के बीज की आहुति से वातावरण स्वच्छ होता है तथा अग्निष्टकारी शक्तियों के प्रकोप की सम्भावना क्षीण होती है। यह वातावरण के शुद्धि की प्राकृतिक व्यवस्था है।

प्रसूतिकाल के सूतक और उसके शुद्धि तक माता व शिशु की सर्वविधि रक्षा की जाती है। जातकर्म ठीक से होने से माता व शिशु सुरक्षित व स्वस्थ रहते हैं।

## 5.9 नामकरण संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

संसार के समस्त क्रियाकलापों हेतु किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की संज्ञा का होना आवश्यक है। यही संज्ञा नाम है। जातक के नाम-निर्धारण हेतु किया जाने वाला संस्कार 'नामकरण' है।

नाम व्यक्ति की वह पहचान है जिससे व्यक्ति अन्य से भिन्न रूप में जाना जाता है। इसीलिये भारतीय परम्परा नामकरण के विषय में अत्यन्त चैतन्य व सावधान रही है। अतः भारतीय परम्परा में शुभ तिथि, वार, नक्षत्र देखकर जातक के जन्म के समय और उसके लक्षणों के अनुसार नाम रखने का 'नामकरण संस्कार' के माध्यम से विधान है। यहाँ नाम को भाग्य व शुभत्व का कारक भी माना जाता है।

गृह्यसूत्रों के आविर्भाव के पूर्व से ही भारत में नामकरण की परम्परा रही है। गृह्यसूत्रों ने प्रथमतः नाम कितने अक्षर का होना चाहिये, किन अक्षरों से आरम्भ होना चाहिये? किन अक्षरों को नाम में नहीं होना चाहिये? बालकों तथा बालिकाओं का नाम कैसा होना चाहिये आदि पर विचार किया है।

नामकरण के अन्तर्गत चारप्रकार का नाम रखने का विधान है-नक्षत्र नाम, जो कि शिशु के जन्म के नक्षत्र पर आधारित होता है, मासनाम-जिस माह में शिशु का जन्म हुआ हो उसके देवता के आधार पर, कुल देवता पर आधारित नाम तथा लौकिक नाम, जिससे जातक लोक में जाना जायेगा

गृह्यसूत्र सामान्यतः शिशु का नामकरण संस्कार उसके जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन सम्पन्न करने का विधान करते हैं। यही चरक और वाग्भट को भी अभिप्रेत है। नामकरण ज्योतिष विद्या से जुड़ा विधि-विधान है जिसमें समय, नक्षत्र, तिथि, वार, पक्ष, स्थान आदि देखकर उसके अनुसार शिशु के नामकरण, उसकी आयु व उसके भविष्य पर विचार करते हैं। इसप्रकार नामकरण संस्कार में शिशु के सम्पूर्ण जीवन की रूपरेखा भी प्रस्तुत होती है। ध्वनि और ध्वनिक्रम का बहुत महत्त्व है 'नामकरण' में नाम ध्वनि, अक्षर, उनकी संख्या, उच्चारण व उनका अर्थ देखकर रखा जाता है जिसका जातक व परिवार तथा समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसप्रकार नाम का सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक व दार्शनिक महत्त्व है।

## 5.10 निष्क्रमण संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

जन्म के पश्चात् प्रथम बार घर के बाहर अथवा प्रसूतिकक्ष के बाहर निकलना 'निष्क्रमण' है। इस अवसर पर किये जाने वाले विभिन्न विधि-विधान 'निष्क्रमण संस्कार' हैं। यह शिशु का बाह्य संसार से प्रथम परिचय है। इसके माध्यम से शिशु सूर्य की किरणों व घर के बाहर के वातावरण के सम्पर्क में आता है। यह शिशु के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना है। प्राचीनकाल से ही शिशु को विधि-विधानपूर्वक प्रथम बार घर से बाहर निकालने की परम्परा रही है। निष्क्रमण संस्कार जन्म के पश्चात् बारहवें दिन से लेकर चतुर्थ मास तक करने का विधान है।

बाह्य वातावरण से शिशु का सम्पर्क एक संवेदनशील प्रक्रिया है अतः इसे अत्यन्त सावधानीपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। निष्क्रमण संस्कार प्रथम बार बाहर के वातावरण से तथा प्रकृति से परिचय के अवसर पर सम्पन्न करने का विधान इसीलिये है। भारतीय में जीवन के प्रत्येक पड़ाव को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसी क्रम में सूर्य, समाज व पर्यावरण से प्रथम प्रत्यक्ष परिचय के अवसर पर भी यहाँ संस्कार का विधान है। जो कि जीवन में संतुलन व सामंजस्य तथा अभिवृद्धि का प्रतीक है। शिशु के बड़े होने के साथ उसके पोषण की आवश्यकताएँ भी बढ़ती हैं अतः माता के दुग्ध के अतिरिक्त भी पोषक तत्वों आवश्यकता होती है। सूर्य इस जगत् का सबसे बड़ा पोषकतत्त्व है। अतः सूर्य का विधिवत् दर्शन शिशु के पोषण के लिये भी महत्त्वपूर्ण है। सूर्य से विटामिन डी3 की प्राप्ति होती है जो कि कैल्शियम के पाचन व अस्थियों के विकास हेतु बहुत आवश्यक है। आज विज्ञान के अनेक शोध इस बात को सिद्ध भी कर चुके हैं। विटामिन डी3 एक महत्त्वपूर्ण पोषक तत्त्व है जिसकी अल्पता से शरीर अनेक प्रकार की दुर्बलताओं से ग्रस्त होकर रोगी बन जाता है। वर्तमान में बच्चों में विटामिन डी3 की अल्पता के विषय में चिकित्साजगत् व अनेक अन्य संस्थाएँ चिन्तित भी हैं। बच्चों को पर्याप्त सूर्यप्रकाश मिल सके इसलिये भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (एफएसएसआई) ने 2018 में 'प्रोजेक्ट धूप' नामक अभियान चलाया था जिसके तहत विद्यालयी छात्रों का एकत्रीकरण मध्याह्न में करने का आह्वान विद्यालयों से किया गया था।

## 5.11 चूडाकरण संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

चूडाकरण संस्कार शिशु के सौंदर्यवर्धन, आयुष्य व कल्याण की कामना से सम्पन्न किया जाता था। इसमें शिशु के गर्भकाल के केशों का कर्तन किया जाता है। यह संस्कार शारीरिक शुचि से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है जिसमें शिशु गर्भस्थ केश से मुक्त होता है और सिर में होने वाले विभिन्न रोगों की संभावना निर्मूल होती है। चूडाकरण मेधावर्धन में भी सहायक माना जाता है। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त तक अथवा तृतीयवर्ष की समाप्ति के पहले चूडाकरण का विधान है। कुछ गृह्यसूत्र तीसरे व पाँचवें वर्ष में चूडाकरण को उत्तम मानते हैं। इसे सूर्य के उत्तरायण होने पर तथा दिन में ही सम्पन्न करने का विधान है। चैत्र व पौष माह तथा ज्येष्ठ व मार्गशीर्ष माह इसके लिये वर्जित बताये गये हैं। उत्तरायण सूर्य का भारतीय परम्परा में बहुत महत्त्व है। सूर्य के उत्तरायण होते ही पृथ्वी को सूर्य की ऊष्मा अधिक मिलने लगती है। वर्षा और शीत की जड़ता समाप्त होने लगती है। प्रकृति भी अपना नवरूप धारण करने लगती है। इसलिये यह समय सर्वविध उत्तम व अनुकूल होता है। भारत में मार्गशीर्ष ऋतुपरिवर्तन का माह व पौष माह अत्यन्त शीत होता है और यह शीतेतर क्षेत्रों में प्रायः विषम वातावरणयुक्त होता है। ज्येष्ठ विकराल उष्णता का समय होता है। अतः ये समय चूडाकरण के लिये इसलिये निषिद्ध माने गये

हैं क्योंकि केश रक्षक की भूमिका में होता है। वह शिशु के शिर पर पड़ने वाले ताप व शीत के प्रभाव से उसकी रक्षा करता है। उक्त मासों में वातावरणीय कारणों से अधिक रक्षा की आवश्यकता होती है। अतः इनमें चूडाकरण वर्जित है।

शिशु के माता के गर्भवती होने पर शिशु के चूडाकरण का निषेध है। शिशु की माता के रजस्वला होने पर उसकी शुद्धि तक भी संस्कार स्थगित करने का विधान है। इसके पीछे कारण यही है कि माता शिशु को सर्वविध सम्हालने की अवस्था में नहीं रहेगी जबकि चूडाकरण में शिशु को सम्हालने की आवश्यकता पड़ेगी ही।

शास्त्रों के अनुसार चूडाकरण का प्रयोजन दीर्घायु की प्राप्ति है। इसका लौकिक प्रयोजन गर्भ के केशों से मुक्ति है। सुश्रुत के अनुसार केश, नख तथा रोम के अपमार्जन अथवा छेदन से हर्ष, लाघव, सौभाग्य व उत्साह बढ़ता है तथा पाप का उपशमन होता है।

**पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।**

**हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्धनम्॥, चिकित्सास्थान, 24.72**

अतः इस संस्कार के मूल में स्वास्थ्य व सौन्दर्य की भावना है।

## 5.12 उपनयन संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

उपनयन संस्कार का सम्बन्ध शिक्षा से है। उपनयन का अर्थ है शिक्षाप्राप्ति अथवा ज्ञानप्राप्ति हेतु जिज्ञासु का गुरु के समीप जाना। इस संस्कार द्वारा ब्रह्मचारी गुरु के पास शिक्षा प्राप्त करने गुरुकुल जाता था। शास्त्र में प्रवेश हेतु उपनयन अनिवार्य था। उपनीत व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठित होता था।

वैदिक काल के पूर्व ही उपनयन संस्कार का उद्भव हो चुका था। गृह्यसूत्रों में उपनयन को पूर्ण-प्रतिष्ठा प्राप्त है। गृह्यसूत्रों आठ से बारहवें वर्ष तक में करने का विधान है। आज के वैज्ञानिक युग में विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि विद्यालय में प्रवेश हेतु बच्चे की आयु 6-12 वर्ष होनी चाहिये<sup>5</sup> विभिन्न देशों के विद्यालयी बच्चों पर किये गये एक अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि छः वर्ष के बाद विद्यालय में प्रवेश लेने वाले बच्चों ने इस आयु से पहले प्रवेश लेने वाले बच्चों की अपेक्षा उत्तम प्रदर्शन किया है<sup>6</sup> बच्चे के शारीरिक व बौद्धिक विकास हेतु उपनयन संस्कार के अन्तर्गत विहित आयु उपयुक्त व वैज्ञानिक है। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी विद्यालय में प्रवेश की आयु छः वर्ष अनुमोदित की है। इसप्रकार भारतीय परम्परा में शिक्षा हेतु विहित प्रवेश की आयु बहुत ही वैज्ञानिक है।

सामान्यतः उपनयन को सूर्य के उत्तरायण काल में सम्पन्न कराने का विधान है। विभिन्न कार्यों के अनुसार विभिन्न ऋतुओं में सम्पन्न कराने का भी विधान है। वसन्त को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारक माना जाता है। वसन्त में विचलन की सम्भावना अधिक रहती है। यह माह उसकी पात्रता की परीक्षा हेतु उत्तम था। धर्म की रक्षा करने हेतु ग्रीष्मकालमें उपनयन करना

<sup>5</sup><https->

[//www.researchgate.net/publication/314968321 Appropriate school starting age A focus on the cognitive and social development of a child](https://www.researchgate.net/publication/314968321_Appropriate_school_starting_age_A_focus_on_the_cognitive_and_social_development_of_a_child)

<sup>6</sup><https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC8431425/>

उत्तम था क्योंकि इससे उसकी प्रारम्भिक परीक्षा हो जाती थी। व्यापार एवम् समाज के भरण-पोषण से सम्बन्धित कर्म के लिए वर्षाकाल में उपनायन करना उचित था क्योंकि वर्षाकाल के बाद व्यापार बढ़ता है तथा विगत वर्ष के मूल्यों में वृद्धि होती है। समाज की आवश्यकताएँ भी बढ़ती हैं अतः यह समय उपयुक्त है। इस प्रकार कर्म व लक्ष्य के अनुसार उपनयन की व्यवस्था बहुत वैज्ञानिक व सामाजिक सन्तुलन को बनाये रखे वाली है। यह व्यवस्था इस बात को भी प्रमाणित करती है कि प्राचीन भारत में विद्याध्ययन हेतु सबको समान अवसर प्राप्त था।

उपनयन संस्कार हेतु आचार्य के चुनाव पर भी विस्तृत विचार किया गया है जिसके अनुसार कुलीन, विद्वान् व आत्मसंयमी आचार्य की कामना करनी चाहिये। श्रुतवान्, अभिजात, चरित्रवान् तथा तपःपूत व्यक्ति को बालक का उपनयन करना चाहिये। शिक्षक को सत्य बोलने वाला, धृतिमान्, दक्ष, प्राणिमात्र के प्रति दयालु, आस्तिक, वैदिक स्वाध्याय में रत, शुचि, वेदाध्ययन से सम्पन्न, चरित्रवान्, जितेन्द्रिय तथा उत्साही होना चाहिये। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी शिक्षकों से यही अपेक्षा की गयी है।

इस संस्कार द्वारा उपवीत ब्रह्मचारी को दण्ड प्रदान किया जाता था। यह दण्ड पलाश, गूलर अथवा बिल्व का होता था। ये तीनों वृक्ष आयुर्वेद में औषधीय उपयोग में लाये जाते हैं।

उपनयन में विद्यार्थी द्वारा माता, पिता तथा सम्बन्धियों से भिक्षा माँगने का भी विधान है। जो कि विद्यार्थी में नम्रता, साहचर्य, सेवा, समन्वय व पारस्परिकता के भाव के उदय और किसी भी प्रकार के अहमन्यता के भाव के शमन के लिये आवश्यक है। उपनयन का विधि-विधान सम्पन्न हो जाने पर विद्यार्थी तीन दिन तक कठोर संयम के व्रत का पालन करता था जिसे 'त्रिरात्र व्रत' कहते थे। इससे विद्यार्थीजीवन अनुशासित होता था।

उपनयन संस्कार का प्रमुख प्रयोजन बालक को अध्ययन व ज्ञान की ओर प्रवृत्त करना था। यह ज्ञान-सिन्धु के प्रति व्यक्ति का प्रथम चरण था। इससमें ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये कठोर जीवन जीते हुये गुरु के समीप रहकर ज्ञान प्राप्त करना होता था।

### 5.13 केशान्त संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

आचार्य के पास गुरुकुल में अध्ययनरत ब्रह्मचारी के प्रथम बार श्मश्रु आदि के क्षौरकर्म के अवसर पर किया जाने वाला संस्कार 'केशान्त' है। इसका शाब्दिक अर्थ है केश का अन्त। 'केश' शब्द का तात्पर्य श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी-मूँछ के केश से है। यह संस्कार वैदिक व्रतों में से एक है। इसे गोदान संस्कार भी कहा गया है क्योंकि इस अवसर पर ब्रह्मचारी आचार्य को एक गाय दान देता था। यह संस्कार प्रायः सोलहवें वर्ष सम्पन्न होता था जब ब्रह्मचारी के श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी आदि आ जाती थी।

केशान्त संस्कार के अन्तर्गत चूड़ाकरण संस्कार के समान ही समस्त विधि-विधान किये जाते हैं। गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार गोदान अर्थात् केशान्त संस्कार में वेदाध्ययन में रत आश्रम में निवास करने वाला ब्रह्मचारी जिस समय केश कटवाये तब उस समय वह कक्ष (बगल), वक्षस्थल, उपस्थ अर्थात् लिङ्ग और शिखापर्यन्त रोम भी कटवाये।

यह संस्कार सीधे रूप से शारीरिक शुचि से जुड़ा हुआ है। विभिन्न स्थानों का केशकर्तन स्वच्छता हेतु बहुत आवश्यक है। शारीरिक स्वच्छता से विभिन्न प्रकार के रोगों की सम्भावना नहीं रहती है तथा व्यक्ति में ऊर्जा, तेज व बल बना रहता है।

## 5.14 समावर्तन संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

समावर्तन संस्कार विद्याध्ययन के पूर्ण होने व ब्रह्मचर्य-व्रत की समाप्ति का सूचक है। विद्याध्ययन पूर्णकर स्नातक होकर ब्रह्मचारी के गुरुकुल से घर लौटने के अवसर पर सम्पन्न किया जाने वाला संस्कार 'समावर्तन' है। इसके द्वारा ज्ञान के सागर में स्नान कर ब्रह्मचारी गुरुकुल से लौटता था और उसे 'स्नातक' कहा जाता था। समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् आवर्तन अर्थात् भली-भाँति (गुरुकुल से स्नातक होकर) लौटना।

यह शिक्षा-क्षेत्र का महत्वपूर्ण संस्कार है। इससे प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा के महत्त्व व उसकी गम्भीरता का पता चलता है।

स्नातक तीन प्रकार के होते थे- विद्यास्नातक, व्रत-स्नातक एवम् विद्याव्रतस्नातक। वेदाध्ययन पूर्ण कर जो व्रत (ब्रह्मचर्य व्रत) को न समाप्त कर समावर्तन करते थे वे विद्यास्नातक कहलाते थे। जो व्रत समाप्तकर वेदाध्ययन न समाप्तकर समावर्तन करते थे वे व्रत स्नातक कहलाते थे। जो वेदाध्ययन और व्रत की अवधि दोनों को पूर्ण कर समावर्तन करते थे वे विद्याव्रतस्नातक कहलाते थे। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी यह प्रावधान किया गया है कि विद्यार्थी अपनी सुविधानुसार अपन उच्च शिक्षा में अध्ययन की अवधि में विभिन्न वर्षों में शिक्षा पूर्ण कर सकता है। उसके अध्ययन समाप्ति पर उसके द्वारा किये गये अध्ययन के परिमाण में उसे उपाधि दी जायेगी। इसप्रकार वैदिक काल में शैक्षणिक उपाधियों हेतु प्रदत्त व्यवस्था अत्यन्त वैज्ञानिक है तथा वह व्यापक सामाजिक सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुये बनायी गयी है।

समावर्तन के अवसर पर ब्रह्मचारी को आभूषण, अंजन(काजल), कर्णपूर, उष्णीष, छत्र, उपानह और दर्पण विधिवत् दिया जाता था तथा सुरक्षा हेतु छड़ी भी दी जाती थी। इसके बाद उसे सामाजिक जीवन में प्रवेश करना होता था अतएव उसके लिये अपरिहार्य सभी वस्तुओं से उसका परिचय करवाया जाता था। यह बहुत ही वैज्ञानिक व्यवस्था थी क्योंकि इसके बाद ब्रह्मचारी प्रायः गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर अपने कर्तव्यों का पालन करता था। गृहस्थाश्रम हेतु उसे लोकाचार जानना आवश्यक था। इसीलिये गुरुकुल से ही लोकाचार का मार्ग समावर्तन के साथ ही प्रशस्त किया जाता था।

समावर्तन संस्कार से यह परिलक्षित होता है कि भारत में ज्ञान, शिक्षा, विद्यार्थी व गुरु का क्या महत्त्व रहा है। समाज में स्नातकों को कितना उच्च स्थान प्राप्त था यह भी समावर्तन संस्कार से ज्ञात होता है।

## 5.15 और्ध्वदैहिक क्रिया व अन्त्येष्टि संस्कार एवम् उसका वैज्ञानिक पक्ष

हिन्दू जीवनपद्धति में जिसप्रकार जन्म का महत्त्व है उसीप्रकार मृत्यु भी यहाँ विशेष है। मृत्यु इस शरीर से प्राण का प्रस्थान ही नहीं है अपितु वह मोक्षमार्ग तथा जीवन के नैरन्तर्य का प्रतीक भी है। इस चराचर जगत् में आत्मा देह धारण करती है तो जब आत्मा देह को छोड़ती है तो वह या तो इस जगत् से मुक्त होती है अथवा यहीं नवीन देह ग्रहण करती है। इसीलिये आत्मा की सद्गति हेतु यहाँ व्यक्ति की मृत्यु पर अन्त्येष्टि संस्कार और उसके निमित्त विभिन्न और्ध्वदैहिक क्रियाओं का विधान है। और्ध्वदैहिककर्म पितृयज्ञ है।

भारतीय परम्परा में व्यक्ति की मरणासन्न अवस्था में उसके द्वारा विभिन्न दान देने का प्रचलन है जिसमें से गोदान बहुत प्रसिद्ध है। सूत्रकाल में दान की गयी गाय अनुस्तरणी कहलाती थी जिसे श्मशान से दूर भाग जाने के लिये उन्मुक्त छोड़ दिया जाता था। दान का बहुत मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। दान मानस को मुक्त करता है तथा उदात्त बनाता है। व्यक्ति के आत्मबल को बढ़ाकर उससे संतोष प्रदान करता है।

गृह्यसूत्रों के अनुसार मृत्योपरान्त होम करके उदुम्बर की लकड़ी की अर्थी बनाकर उस पर रोएँदार कृष्ण मृगचर्म बिछाकर शव का सिर दक्षिण की ओर करके उसे लेटा देना चाहिये। इसके बाद शव को मन्त्रोच्चारपूर्वक रंगरहित अर्थात् श्वेत, जिसके किनारे कटे-छँटे न हों, ऐसे वस्त्र से ढँककर श्मशान की ओर ले जाना चाहिये।

यहाँ होम करना स्वयं में ही वातावरण-शोधक प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न औषधियों का प्रयोग होता है। इस प्रक्रिया में अग्नि का ताप तथा धूम की भी बहुत महत्ता है। इसके बाद उदुम्बर अर्थात् गूलर की लकड़ी की अर्थी बनाने का विधान है। गूलर की लकड़ी सशक्त होती है तथा वह यज्ञीय काष्ठ में से एक है। जब सभी ने देवताओं का साथ छोड़ दिया तब भी उदुम्बर उनके साथ था। अतः यह सदैव साथ रहने वाला है। सदा आर्द्र व दुग्धदायी वृक्ष होने के कारण पोषक भी है। हिन्दूपरम्परा में गूलर का बहुत महत्त्व है। यह विष्णु से जुड़ा हुआ वृक्ष है। शव को रंगरहित वस्त्र से ढँकने का महत्त्व यह है कि आत्मा के प्रयाण के बाद तीनों गुणों सत्त्व, रजस् व तमस् की विषमावस्था से जो जीवन अस्तित्व में आया था अब वह रहा नहीं। तीनों गुणों की साम्यावस्था हो गयी तो अब विभिन्न सांसारिक क्रियाकलापों के संचालन हेतु उपस्थित रंगों का कोई प्रयोजन नहीं है। श्वेत मुक्ति का रंग है, जो कुछ भी सङ्ग्रहीत नहीं रखता। सब कुछ लौटा देता है। जब शरीर ने विभिन्न रंगों का कारक आत्मा को ही लौटा दिया तो अब तो कुछ शेष ही नहीं रहा अतः श्वेत वस्त्र का यहाँ विधान है। इससे ज्ञात होता है कि हिन्दू जीवनपद्धति के प्रायः प्रत्येक तत्त्व में प्रतीकात्मकता के साथ-साथ वैज्ञानिकता का समावेश है।

शवयात्रा में दो वर्ष से ऊपर की आयु के सभी मृतकों के साथ सपिण्डजनों के श्मशान तक जाने का विधान इसीलिये है क्योंकि मानव सामाजिक होता है। उसमें लगाव व प्रेम होता है। यद्यपि मृत्यु अवश्यंभावी है परन्तु वह प्रायः घोषणा करके नहीं आती। मृत्यु महाप्रस्थान है जिससे व्यक्ति का अपने स्नेहिल स्वजन से चिरविछोह होता है। ऐसे में इस अपार कष्ट को सहन करने के लिये मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक व पारिवारिक सम्बल चाहिये। इससे परिजन दुःख सहन करने की क्षमता विकसित कर पाते हैं। समूह में रहने से अपार दुःख के समय भ्रमित बुद्धि के कारण व्यक्ति कोई अनुचित कदम नहीं उठा पाता। इसके साथ ही श्मशान व और्ध्वदैहिक क्रिया के विभिन्न क्रिया-कलापों को करने के लिये व्यक्तियों की कुछ संख्या का होना आवश्यक है। इसमें सपिण्डों का विधान इसलिये है क्योंकि वही गोत्राचार, कुलाचार व स्थानीय लोकाचार से परिचित होते हैं तथा मृतक के परिजनों के साथ खड़े रहकर सभी क्रियाओं को सम्यक् रूप से सम्पन्न करवाने में सहायक होते हैं।

शवयात्रा में 'अनुस्तरणी' अर्थात् एक गाय अथवा बकरे को तीन बार चिता की प्रदक्षिणा कर मुक्त छोड़ दिये जाने का विधान एक ओर भारत के मौलिक स्वभाव दान को पुष्ट करता है दूसरी ओर इसमें समाजकल्याण की भावना भी अन्तर्निहित है। इस अवसर पर दान किया गया पशु व्यक्तिविशेष की सम्पत्ति न होकर समस्त समाज की सम्पत्ति होता था जिससे समाज के वे लोग जिनके लिये उस समय ये पशु प्रायः अप्राप्य थे। इन पशुओं के दुग्ध तथा इनसे उत्पन्न सन्तानों

से लाभान्वित हो सकते थे। कालान्तर में विभिन्न भ्रान्तियों वश अनुस्तरणी में निहित सामाजिक पक्ष उपेक्षित होता गया।

श्मशानभूमि पहुँचने पर गड्ढा खोदलर चिता तैयार करने का विधान भी वैज्ञानिक है जहाँ एक ओर चिता की अग्नि में शरीर के भस्म होकर पञ्चतत्त्व में विलीन होने की भावना निहित है वहीं दूसरी ओर आंधी, वर्षा, जलप्रवाह आदि किसी प्राकृतिक व्यवधान से चिता तथा उसकी भस्म को किसी भी प्रकार के प्रभाव से बचाने में भी गड्ढा सहायक है। यह गड्ढा चिता की माप सुनिश्चित करने में भी उपयोगी है। दाहक्रिया में की जाने वाली विभिन्न अग्नियों की आहुति के प्रति एक मान्यता तो यह है ही कि यह स्वर्ग पहुँचाती है पर इसके साथ ही अग्निर्विशेष शोधक भी है। हिन्दुओं की शवदाह-प्रक्रिया सर्वाधिक वैज्ञानिक इसीलिये है क्योंकि इसमें सब कुछ जलकर भस्म हो जाता है। कुछ भी शेष नहीं बचता। इस प्रक्रिया में प्रयुक्त लकड़ियाँ और अन्य सामग्री विशिष्ट होती हैं जिससे पर्यावरण की शुद्धि होती है तथा मृतक के शरीर के रोग आदि विकार चिता के आसपास के व्यक्तियों व पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव नहीं डाल पाते। इसीलिये गृहसूत्रों में अलग-अलग प्रकार से मृत हुये व्यक्तियों के दाहसंस्कार में पृथक्-पृथक् प्रकार की दाहसामग्री का विधान है। दाहप्रक्रिया में की जाने वाली प्रार्थना बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसमें नेत्र जिसका विषय रूप है और जिसके हेतु सूर्यालोक की अपेक्षा होती है, उसकेसूर्य के निकटजाने, प्राणवायु के वायुमण्डल में विलीन होने की प्रार्थना की जाती है तथा व्यक्ति के पुण्यकर्मों के अनुरूप उसके स्वर्ग, पृथ्वी या जलीय किसी भी लोक को जाने की कामना की जाती है। भारतीय परम्परा पुनर्जन्म पर विश्वास करती है। पुनर्जन्म की अनेक घटनाएँ भी समय-समय पर प्रकाश में आती रहती हैं। यह प्रार्थना उसी मान्यता को पुष्ट करती है।

दाहसंस्कार में घृत के उपयोग का विधान है। घृत पर्यावरणशोधक है यह बात आधुनिक विज्ञान के परीक्षणों द्वारा सिद्ध हो चुकी है। आयुर्वेद में घृत को समस्त स्नेहद्रव्यों में श्रेष्ठ कहा गया है-

**स्नेहानामुत्तमम् (अष्टाङ्गहृदयम्, 1/5/39)**

दाहसंस्कार के बाद मृतक की सातवीं या दसवीं पीढ़ी पर्यन्त सभी सम्बन्धी निकटतम नदी या तालाब में स्नान कर स्वयं को शुद्ध कर प्रजापति की स्तुति करते हैं। श्मशान से आने के बाद शुद्धि व स्वच्छता हेतु स्नान आवश्यक है। यह स्नान स्वच्छता व स्वास्थ्य से जुड़ा है। हिन्दू जीवन में स्नान का बहुत महत्त्व है। माना जाता है कि स्नान से न केवल शरीर का मल दूर होता है अपितु उससे पाप भी धुलता है। स्नान व्यक्ति के बाह्याभ्यंतर शुचि हेतु आवश्यक है। स्नान द्वारा व्यक्ति को मानसिक शान्ति का भी अनुभव होता है। श्मशान में जलती चिता देखकर मन में उत्पन्न होने वाले संसार के प्रति वैराग्य भाव का शमन होता है। आयुर्वेद में स्नान का महत्त्व बताते हुये कहा गया है कि स्नान आयु, उत्साह, बल, बढ़ाता है तथा खुजली, त्वचा का मल, थकावट, पसीना, जम्हाई, प्यास, दाह तथा पाप अर्थात् रोगों का नाश करता है-

**दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जाबलप्रदम्।**

**कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृडाहपाम्पजित्॥ (अष्टाङ्गहृदयम्, 1/2/16)**

दाहकर्म के बाद उदककर्म अर्थात् मृतक को जल देने की क्रिया सम्पन्न होती है। जिसका पारमार्थिक लक्ष्य यह है कि यह जल मृतक को प्राप्त होता है परन्तु इस क्रिया का पर्यावरणगत महत्त्व बहुत अधिक है। उदककर्म से परोक्षरूप से वृक्ष-वनस्पतियों का सिंचन व पक्षियों हेतु

जल पीने की व्यवस्था हो जाती है। इस क्रिया द्वारा मृतक के परिजनों एवम् सबसे निकटस्थ सम्बन्धी के मानस को यह सान्त्वना मिली है कि वह अपने प्रियजन के प्रति, जो इस संसार में नहीं रहा, कुछ कर पा रहा है। ऐसी मान्यता है कि आत्मा द्वारा स्थूलशरीर को छोड़ने के बाद भी सूक्ष्मशरीर बना रहता है।

स्नान के अनन्तर घर पहुँचने पर प्रवेश से पूर्व स्वयं को शुद्ध करने के लिये पत्थर, अग्नि, गोबर, अन्न, तिल के बीज, जल और तेल का स्पर्श कर तथा नीम की पत्ती चबाकर मुख शुद्ध करते हैं, विशेष लकड़ियों का धुँआ लेते हैं, फिर घर में प्रवेश करते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा मान्यता यह है कि कोई भी अशुभ शक्ति तथा कोई भी अवांछित तत्त्व घर के अन्दर प्रवेश न करें। इसमें प्रयुक्त विभिन्न पदार्थ शोधक है। अग्नि व पत्थर की शोधन में प्रत्यक्ष व प्रधान भूमिका है। इससे समस्त प्रकार की नकारात्मक शक्तियाँ व कीटाणुओं का शमन होता है। गाय का गोबर अत्यन्त कीटाणुनाशक है। आज विज्ञान भी इस बात को सिद्ध कर चुका है।<sup>7</sup> पञ्चगव्य को सबसे प्रभावी पोषक तत्त्व माना जाता है। विश्व भर में गोवंश के उत्पादों को लेकर 'काउपैथी' नामक उपचार प्रणाली का प्रभाव व प्रसार बढ़ रहा है।<sup>8</sup> नीम का कीटाणुनाशक गुण आयुर्वेदसम्मत, आधुनिक विज्ञानसम्मत<sup>9</sup> व लोकप्रसिद्ध है-

**नात्युष्णं निम्बजं तिक्तं कृमिकुष्ठकफप्रमुत्।** (अष्टाङ्गहृदयम्, 1/5/60)

शवदाह के अनन्तर साधारणतः दस दिन तक अशौच रहता है जिसके निषेधात्मक व विध्यात्मक नियम हैं। निषेधात्मक नियमों के अन्तर्गत भोग-विलास आदि पर निषेध व विध्यात्मक के अन्तर्गत विविध प्रकार का संयम, भूमि पर शयन, एक समय भोजन आदि आते हैं। इस अशौचकाल का बहुत सामाजिक, आध्यात्मिक व मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। इस अवधि में पालन किये गये विशेष नियमों-एक समय भोजन आदि से शोकवश मन्द जठराग्नि के कारण पाचन में समस्या नहीं होती। सात्त्विक भोजन करने से मन शान्त रहता है। मृतक के निमित्त अन्य विहित कर्मों के करने से मन में यह भाव रहता है कि अपने प्रियजन के निमित्त कुछ कर पा रहे हैं। यह भाव बहुत बड़ा आत्मिक व मानसिक सम्बल होता है जो शोकग्रस्त व्यक्ति व परिवार को धीरे-धीरे शोकमुक्त कर, पुनः सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त करता है।

शवदाह के पश्चात् जब अग्नि पूर्णरूपेण शान्त हो जाती है तब अस्थिचयन होता है। इसमें व्यक्ति की शेष बची अस्थियों को चुनकर एक पात्र में रख दिया जाता है फिर उन्हें नदी में प्रवाहित किया जाता है तथा राख को भी प्रवाहित कर दिया जाता है। इससे दाहसंस्कार स्थल स्वच्छ हो जाता है तथा मृतक व्यक्ति के देह का सर्वस्व पञ्चतत्त्व में विलीन हो जाता है। इसके पीछे मान्यता यह है अस्थिविसर्जन भी मुक्तिदायी है।

अस्थिचयन के पश्चात् शान्तिकर्म प्रारम्भ होता है। जिसके अन्तर्गत मृत्यु के नवम रात्रि के पश्चात् अगली प्रातः क्षौरकर्म तथा स्नान इत्यादि करना चाहिये। इस अवसर पर श्मशान भूमि पर कुछ स्मारक के निर्माणकार्य तथा बीजवपन का उल्लेख मिलता है। क्षौरकर्म व स्नान आदि शारीरिक शुचि व मृतक के कुल के अशौचकाल की समाप्ति हेतु आवश्यक हैं। श्मशान भूमि में

<sup>7</sup>[Differential effects of cow dung and its biochar on Populus euphratica soil phosphorus effectiveness, bacterial community diversity and functional genes for phosphorus conversion - PMC \(nih.gov\)](https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC8814384/)

<sup>8</sup><https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC8814384/>

<sup>9</sup>[The Antimicrobial Potential of the Neem Tree Azadirachta indica - PMC \(nih.gov\)](https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC8814384/)



वृक्षारोपण पर्यावरण के प्रति किया गया एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके कारण अनेक स्थानों पर श्मशान भूमि में छायादार व फलदायी वृक्षों की समृद्ध उपस्थिति है। वृक्ष पर्यावरण हेतु कितने महत्त्वपूर्ण हैं यह सर्वविदित है। यह प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति व लोककल्याण का कार्य है।

और्ध्वदैहिक क्रिया के अन्तर्गत अशौच अवधि में सबसे महत्त्वपूर्ण पिण्डदान-क्रिया है। इसमें मृतक आत्मा को उपस्थित माना जाता है तथा उसके सम्बन्धियों द्वारा उसके प्रति भोजन आदि प्रस्तुत किया जाता है। पिण्डदान हेतु सामान्यतः पितरों को आमन्त्रित किया जाता है। इसमें चावल के आटे का पिण्ड बनाया जाता है जो कि शरीर के अवयवों का पूरक माना जाता है। इसमें भी पुनर्जन्म की भारतीय भावना की प्रधानता है। इससे पशु-पक्षियों, चींटियों आदि के भोजन की भी व्यवस्था होती है। इसमें मृतक के प्रति कुछ करने की भावना भी है जिससे मानसिक विश्रान्ति मिलता है।

इसी दिन वृषोत्सर्ग की क्रिया सम्पन्न होती है, जिसमें एक साँड़ और एक गाय को खुला छोड़ना होता है। इस प्रक्रिया में किये जाने वाले 'वृषोत्सर्ग' का कृषिप्रधान भारतीय संस्कृति में बहुत सामाजिक महत्त्व रहा है। इसमें छोड़ जाने वाले वृष को समाज का प्रत्येक व्यक्ति मृतक के प्रतिनिधि के रूप में देखता था तथा उसकी रक्षा करते हुये उसे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता था। ऐसे में वह वृष निर्भय होकर विचरण करता था तथा हृष्ट-पुष्ट व स्वस्थ रहता था जिससे कि समाज में उन्नत गोवंश का प्रजनन सुनिश्चित होता था।

मृत्यु के बाद बारहवें दिन, तीनों पक्षों के अन्त में या वर्ष की समाप्ति पर प्रेत को पितरों से संयुक्त करने की क्रिया सम्पन्न होती है जिसे 'सपिण्डीकरण' कहते हैं। सपिण्डीकरण हेतु विहित तिथियों के आरम्भ में षोडश श्राद्ध किये जाते हैं। यह जीव व प्रकृति के तादात्म्य का संकेत है तथा मृतक व्यक्ति के प्रति श्रद्धा व स्नेह के भाव की अभिव्यक्ति है। इस अवसर पर भोज तथा दान आदि मन को सम्बल देते हैं। इसप्रकार धीरे-धीरे मृतक से सम्बन्धित शोकसंतप्त व्यक्ति व परिवार शोक से बाहर आकर सामाजिक जीवन की ओर प्रवृत्त होते हैं।

इसप्रकार और्ध्वदैहिक क्रिया और अन्त्येष्टि संस्कार का भारतीय जीवनपद्धति में बहुत महत्त्व है। यह संस्कार भारतीय दर्शन के सर्वाधिक सशक्त सिद्धान्त 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' पर आधारित है। इसके द्वारा मृतक के परलोक को सुधारने एवम् उसकी सद्गति हेतु कामना की जाती है। इसके अन्तर्गत किये जाने वाले विभिन्न विधि-विधान प्रियजनों के विछोह में शोकसंतप्त हृदय की वेदना को कम करते हैं। यह एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक उपचार-पद्धति है जो अत्यधिक शोकवश अवसाद व आत्मघात से व्यक्ति की रक्षा करती है। उसके सम्बल को बनाये रखती है तथा आशाओं को जीवित रखती है। और्ध्वदैहिक क्रिया प्रकृति व स्रष्टा के प्रति एक समर्पण व कृतज्ञता का भाव भी है।

## 5.16 सारांश

संस्कार हिन्दू जीवन के महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं। हिन्दूजीवन अपने आरम्भ से अन्त तक प्रधानतः सोलह संस्कारों में आबद्ध है। इन संस्कारों का मनोवैज्ञानिक, पर्यावरणीय, सामाजिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक व वैज्ञानिक महत्त्व है। संस्कार व्यक्ति के जीवन को संतुलित बनाते हैं तथा उसे दिशा प्रदान करते हैं। संस्कारों का मानव के उत्थान में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन समस्त संस्कारों के विधिविधान समय व प्रकृति की प्रयोगशाला में दीर्घकाल तक परीक्षित हैं।

संस्कारों से मानवजीवन की सामाजिकता को बल मिलता है तथा व्यक्ति के बल, बुद्धि, प्रज्ञा, विवेक व दार्शनिक प्रतिभा का विकास होता है। परिवार, समाज व राष्ट्र का समन्वय होता है। संस्कार प्रकृति के प्रति मानव की उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं। इनके माध्यम से व्यक्ति मनुष्य बनता है। भौतिकता की इस सभ्यता में जब मनुष्य को यन्त्र समझा जा रहा है, संस्कार मनुष्य को मनुष्य ही समझने हेतु प्रवृत्त करते हैं तथा साथ ही यह भी स्मरण करवाते रहते हैं कि यह सृष्टि परब्रह्म द्वारा रचित है, यहाँ मनुष्य को त्यागानुसार भोग करना चाहिये।

### 5.17 शब्दावली

- 1) **हिक्का**- बहुत हिचकी आने का रोग।
- 2) **श्वास (रोग)**- आयुर्वेद में सर्दी, खांसी, जुकाम आदि फेफड़े व श्वसन तन्त्र से जुड़े रोगों को 'श्वास' के अन्तर्गत रखा गया है।
- 3) **गलग्रह**-गले में होने वाला संक्रमण जिससे निगलने में कष्ट होता है।
- 4) **गलशुण्डी**- प्रायः बच्चों में होने वाला एक रोग जिससे जीभ के अन्तिम छोर पर तालु में सूजन आ जाती है।
- 5) **उपजिह्विका**- कण्ठ के पास जीभ के मूल में स्थित छोटी जीभ में होने वाला एक रोग।
- 6) **केशपतन**-बालों का झड़ना
- 7) **निषेधात्मक नियम**-जिन कार्यों को नहीं करना चाहिये उनको न करने का नियम।
- 8) **विध्यात्मक नियम**-जिन कार्यों को करना चाहिये, उनके करने का नियम।
- 9) **उदुम्बर**-गूलर
- 10) **वृषोत्सर्ग**- अन्त्येष्टि संस्कार के अवसर पर की जाने वाली एक क्रिया जिसमें एक वृष को मुक्तरूप से छोड़ा जाता है।
- 11) **दीर्घायुष्य**- लम्बी आयु
- 12) **सूतिका-गृह**- प्रसव हेतु बनाया जाने वाला घर जिसमें प्रसूता व शिशु के निवास तथा सुरक्षा की व्यवस्था हो।
- 13) **मनःप्रसादन**- मन की प्रसन्नता

### 5.18 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अल्लेकर, अनन्त सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षापद्धति, सुविचार प्रकाशन मंडल लिमिटेड, नागपूर, 1935
2. अष्टाङ्गहृदयम्, व्या. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सम्स्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2015
3. आलायनगृह्यसूत्रम्, सं. पण्डितकुलपति, श्री जीवानन्द विद्यासागर, सरस्वतीयन्त्रे, 1883ई.
4. आश्वालायनगृह्यसूत्रम्, टी. गणपति शास्त्री, हरिदत्ताचार्य मिश्र, महामहिमश्रीमूलकरामवर्मकुलशेखरमहाराजशासनेन राजकीयमुद्रणयन्त्रालये तदध्यक्षेण मुद्रयित्वा प्रकाशितम्, 1923

5. ऋग्वेदसंहिता, वैदिक संशोधन मंडल, पूना, 1941
6. गोभिलगृह्यसूत्रम्, टीका.पं सत्यव्रत सामशास्त्री, मथुरापुरस्थ शास्त्रप्रकाश कार्यालये, 1906ई.
7. तैत्तिरीयब्राह्मणम्, सायणभाष्यसहितम्, आर. शाम. शास्त्री, गवर्नमेण्ट ब्रांच प्रेस, मैसूर 1921
8. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार- सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957
9. पाण्डेय, विजयशंकर, वैदिकसूक्तसंकलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
10. पारस्करगृह्यसूत्रम्, सुधाकर मालवीय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
11. मनुस्मृति, सं. पं. हरिगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस।
12. शतपथ-ब्राह्मण, शांकर भाष्य, अनुवादक- माधवानन्द, अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी, संवत्-1994-97
13. शास्त्री, हरिदत्त, ऋक्सूक्तसङ्ग्रह, रतिराम शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
14. सरस्वती, स्वामी सत्यप्रकाश, प्राचीन भारत में रसायन का विकास, पुस्तकायन, नयी दिल्ली, 1995
15. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी, 1985
16. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, यजुर्वेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
17. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, सामवेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
18. वाक्यपदीयम्, प्रथमो भागः, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2016
19. वैदिक सूक्त सङ्ग्रह, गीताप्रेस, गोरखपुर।
20. The Bodhayana Grhyasutra, Ed. R Shama Sastri, Meharchand Lachhmandas, New Delhi, 1982, reprint from 1920
21. The Varaha-Grihyasutra, Ed Raghu Vira, Meharchand Lachhmandas, New Delhi, 1982

---

## 5.19 बोध प्रश्नोत्तर

---

### दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्राग्-जन्म संस्कारों के वैज्ञानिक महत्त्व पर प्रकाश डालिये।
2. जातकर्म संस्कार का शिशु के जीवन में क्या महत्त्व है? इस संस्कार के वैज्ञानिक तत्त्वों पर प्रकाश डालिये।
3. और्ध्वदैहिक क्रिया के अन्तर्गत विभिन्न क्रियाओं के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर प्रकाश

डालियो।

4. उपनयन संस्कार का भारतीय जीवन में क्या महत्त्व है? उसके वैज्ञानिक पक्ष का विवेचन कीजिये
5. 'भारतीय विवाह पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति है' विवाह संस्कार के सन्दर्भ में इस कथन को व्याख्यायित कीजिये।

#### लघु उत्तरीय प्रश्न

1. केशान्त का वैज्ञानिक महत्त्व क्या है?
2. सीमन्तोन्नयन के वैज्ञानिक पक्ष पर प्रकाश डालियो।
3. गर्भाधान संस्कार के वैज्ञानिक महत्त्व को समझाइयो।
4. निष्क्रमण संस्कार के औचित्य व वैज्ञानिकता की विवेचना कीजिये।
5. नामकरण संस्कार का वैज्ञानिक महत्त्व बताइयो।

#### दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय जीवन में संस्कारों का महत्त्व बताते हुये केशान्त संस्कार पर प्रकाश डालियो।
2. केशान्त व समावर्तन संस्कार पर एक निबन्ध लिखियो।
3. और्ध्वदैहिक क्रिया से आप क्या समझते हैं? समझाइयो।
4. अन्त्येष्टिसंस्कार का भारतीय जीवन में क्या महत्त्व है?
5. समावर्तन संस्कार का वर्णन करते हुये इसके महत्त्व को समझाइयो।

#### लघु उत्तरीय प्रश्न

1. स्नातकों के प्रकार बताइयो।
2. केशान्त संस्कार करने का उचित समय क्या है?
3. 'समावर्तन' शब्द से क्या आशय है?
4. किन्हीं पाँच और्ध्वदैहिक क्रियाओं का नामोल्लेख कीजिये।
5. चूडाकरण व केशान्त संस्कार में अन्तर पर प्रकाश डालियो।